

इंदिरा गाँधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

खंड

3

राष्ट्रीय आंदोलन – जन आधारित राजनीति की अवस्था—1

इकाई 9

युद्ध अवधि के दौरान राष्ट्रवादी राजनीति 5

इकाई 10

गाँधी का उदय 15

इकाई 11

महत्त्वपूर्ण मोड़ 27

इकाई 12

खिलाफत और असहयोग आंदोलन 38

इकाई 13

क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ 47

इकाई 14

परिषदों के भीतर और बाहर प्रतिरोध 57

विशेषज्ञ समिति

प्रो. मृदुला मुखर्जी
प्रोफेसर, इतिहास
सेंटर फॉर हिस्टोरिकल
स्टडीज, जे.एन.यू.
नई दिल्ली

प्रो. आदित्य मुखर्जी
प्रोफेसर, इतिहास
सेंटर फॉर हिस्टोरिकल
स्टडीज, जे.एन.यू.
नई दिल्ली

प्रो. अपर्णा बसु
पूर्व-प्रोफेसर, इतिहास
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. के.एल. टुटेजा
पूर्व-प्रोफेसर, इतिहास
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. सुचेता महाजन
प्रोफेसर, इतिहास
सेंटर फॉर हिस्टोरिकल
स्टडीज,
जे.एन.यू., नई दिल्ली

प्रो. जी.पी. शर्मा
इतिहास एवं संस्कृति विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

डॉ. विशालाक्षी मेनन
जीसस एण्ड मेरी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. सलिल मिश्रा
इतिहास विभाग
अंबेडकर विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. कपिल कुमार
इतिहास संकाय
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. रविन्द्र कुमार
इतिहास संकाय
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. ए.आर.खान
इतिहास संकाय
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. स्वराज बसु
इतिहास संकाय
इग्नू, नई दिल्ली

* इस पाठ्यक्रम की संकल्पना करने तथा प्रारंभ करने हेतु हम प्रो. सलिल मिश्रा के आभारी हैं।

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. एस.बी. उपाध्याय

कार्यक्रम संयोजक

प्रो. स्वराज बसु

खंड निर्माण दल

इकाई सं.	इकाई लेखक	इकाई सं.	इकाई लेखक	अनुवादक
इकाई 9-11	प्रो. स्वराज बसु इतिहास संकाय इग्नू, नई दिल्ली	इकाई 13	प्रो. एस. इरफान हबीब न्यूपा, नई दिल्ली	डॉ. सुशील कुमार तिवारी
इकाई 12	प्रो. एस.बी. उपाध्याय इतिहास संकाय इग्नू, नई दिल्ली	इकाई 14	प्रो. सलिल मिश्रा इतिहास विभाग अंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली	

सामग्री निर्माण

श्री मंजीत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

मार्च, 2016

©इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016

ISBN-978-81-266-6918-9

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ एवं इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

खंड 3 राष्ट्रीय आंदोलन – जन आधारित राजनीति की अवस्था-1

प्रस्तावना

इस खंड में हम राष्ट्रीय आंदोलन की अधिक जन आधारित राजनीति के परिप्रेक्ष्य में चर्चा करेंगे। स्वदेशी आंदोलन के अवसान के पश्चात राष्ट्रवादी राजनीति ने अपेक्षाकृत एक शांतिपूर्ण चरण में प्रवेश किया था। राष्ट्रवादी आंदोलन की श्रेणियाँ 'नरमपंथी' और 'गरमपंथी' दो धड़ों के बीच बंट गई। सरकार की नीति 'गरमपंथी' आंदोलन को दमित करने जबकि 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों के ज़रिए 'नरमपंथियों' को रियायतें देने की थी। इन सुधारों ने मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडलों के प्रावधान के ज़रिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एक दरार पैदा कर दी। बाल गंगाधर तिलक के कारावास और निर्वासन तथा बंगाल के कुछ सक्रिय नेताओं के राजनीति से सन्यास लेने के पश्चात् गरमपंथी भी उदासीन थे। तथापि, मार्ले-मिंटो सुधार से पैदा हुआ राजनीतिक असंतोष समय के साथ बढ़ा। प्रथम विश्व युद्ध की अवधि व्यापक जन-असंतोष की अवधि साबित हुई, खासतौर से इस अवधि के दौरान पैदा हुई कठिनाइयों की वजह से। तिलक और एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में दो होम रूल लीग भारत के लिए स्वशासन की माँग हेतु लोगों को इकट्ठा करने की कोशिश कर रही थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता कायम करने की कोशिशें भी हुई जिन्होंने राष्ट्रवादी राजनीति को उच्च स्तर तक पहुँचा दिया। हम इन मुद्दों की चर्चा **इकाई 9** में करेंगे।

यह आम सहमति है कि लोकप्रिय लामबंदी की गाँधीवादी पद्धति ने भारत में राष्ट्रवादी राजनीति की प्रकृति को रूपांतरित कर दिया। गाँधी दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध पहले ही इन पद्धतियों को अपना और लागू कर चुके थे। भारत में, चंपारण और खेड़ा में किसान विद्रोह तथा अहमदाबाद में मजदूर आंदोलन ने गाँधी को सत्याग्रह के उनके अपने सिद्धांत के अनुसार विरोधों को संगठित करने की ज़मीन प्रदान की। आप इस विकास के बारे में **इकाई 10** में जानेंगे। युद्धोत्तर वर्ष विशेष तौर पर अति व्यस्त राजनीतिक कार्यकलापों के साक्षी बने। बेरहम अधिनियमों के विरुद्ध गाँधी द्वारा प्रारंभ किया गया रौलट सत्याग्रह, जिसने सरकार को मनमानी शक्तियाँ दीं, देश के विभिन्न भागों में फैल गया। अभूतपूर्व जन विद्रोह मुम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, अमृतसर और अन्य दूसरे स्थानों पर देखे गये। सरकार ने व्यापक दमन के साथ जवाब दिया जिसका चरमोत्कर्ष जालियाँवाला बाग में देखा गया, जहाँ हजारों निःशस्त्र लोग— पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे बेरहमी से मारे गए। यह देश के मन-मस्तिष्क पर गहरा धक्का था और इसने निर्णायक रूप से लोगों को उपनिवेशवाद के विरुद्ध खड़ा कर दिया। यह एक 'महत्वपूर्ण मोड़' था जिसके बारे में **इकाई 11** में विचार-विमर्श किया जाएगा। रौलट सत्याग्रह के पश्चात् जल्द ही खिलाफत और असहयोग आंदोलन हुए जो हिन्दू-मुस्लिम एकजुटता के अभूतपूर्व सार्वजनिक प्रदर्शन के साक्षी बने। असहयोग आंदोलन ने उपनिवेशविरोधी विद्रोहों के लिए लामबंद करने हेतु किसानों और शहरी लोगों के कष्टों का प्रभावी रूप से उपयोग किया। अधिकतम भारत राष्ट्रवादी उत्साह के साथ फौरन हरकत में आ गया और कांग्रेस नई ऊर्जा से भर उठी तथा सही अर्थों में जन आधारित बनी। **इकाई 12** में राष्ट्रवादी लामबंदी की इस अवस्था के बारे में बताया जाएगा।

इकाई 13 में क्रांतिकारी राष्ट्रवादी संगठनों एवं व्यक्तियों के बारे में बताया जाएगा, जिनकी स्मृतियाँ अभी भी लोगों के मस्तिष्क में अंकित हैं। समर्पित, निःस्वार्थ और अत्यंत राष्ट्रवादी

व्यक्तियों की एक संख्या, जैसे— रामप्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आज़ाद, सूर्य सेन, जतिन दास, भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव मुख्यधारा की राष्ट्रवादी राजनीति से अधीर हो उठे थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन से भारत की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एक अलग मार्ग अपनाया। आरंभ में उपनिवेश विरोधी उग्र हिन्दू अवधारणा से व्युत्पन्न इस चलन ने धीरे-धीरे समाजवादी विचारों को ग्रहण किया जो धर्म के परे गया और औपनिवेशिक शासन तथा निरंकुशतावाद से आज़ादी को अपना लक्ष्य घोषित किया। ये विचार सबसे स्पष्ट रूप से भगत सिंह में परिलक्षित होते हैं।

अंततः **इकाई 14** राष्ट्रवादी नेताओं के संवैधानिक क्रियाकलापों पर विचार-विमर्श करता है, विशेष रूप से स्वराज पार्टी के संबंध में। राष्ट्रवादी राजनीति का यह चलन जो यद्यपि मुख्यधारा के गाँधीवादी राजनीति से दूर खड़ा है, ने उस धोखे को बेनकाब करने में महत्वपूर्ण रूप से योगदान दिया, जो औपनिवेशिक संवैधानिक सुधारों के रूप में भारत में प्रस्तावित किए गए।



इकाई 9 युद्ध अवधि के दौरान राष्ट्रवादी राजनीति*

संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 भारत पर युद्ध का प्रभाव
- 9.3 होम रूल आंदोलन
- 9.4 लखनऊ समझौता
- 9.5 सारांश
- 9.6 अभ्यास

9.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध 1914 में छिड़ा और यह 1918 तक जारी रहा। भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा होने के नाते बिना इसके नागरिकों की सहमति के युद्ध में शामिल कर दिया। युद्ध का प्रभाव न सिर्फ भारतीयों के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर अपितु उनके राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध की अवधि के दौरान भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में प्रमुख रुझानों को जानना दिलचस्प होगा। हम इस इकाई में सर्वप्रथम भारत पर युद्ध के प्रभाव और भारतीयों की प्रतिक्रिया को व्याख्यायित करेंगे। फिर 'स्वशासन' के लिए दबाव डालने हेतु राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा की गई पहलों पर विचार विमर्श करेंगे। आप यह भी जानेंगे कि किस प्रकार युद्ध के दौरान मुस्लिम लीग तथा राष्ट्रवादियों के विभिन्न समूहों ने भारत के लिए स्वयं की सरकार की मांग को आगे बढ़ाने हेतु हाथ मिलाया। 1916 में लखनऊ समझौते पर हस्ताक्षर ने हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच एकता को और मजबूत किया। युद्ध के दौरान राष्ट्रवादियों द्वारा और अधिक स्वशासी अधिकारों की मांगों को उठाया गया। राष्ट्रवादी राजनीति में इस अवधि ने ब्रिटिशों के विरुद्ध अधिक व्यापक आंदोलन के लिए जमीन तैयार की।

9.2 भारत पर युद्ध का प्रभाव

1914 में जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा, तब कांग्रेस के नेतृत्व के बीच विभाजनकारी रीतियों के बजाय स्व-शासन की मांग उठ रही थी। कईयों को युद्ध में ब्रिटिशों को समर्थन दिए जाने के बारे में संदेह था, जोकि भारत के हित में नहीं था लेकिन भारत में ऐसे लोग भी थे जो विश्वास करते थे कि ब्रिटिश सरकार को इसके युद्ध के प्रयासों में मदद करना, भारतीय स्वतंत्रता के उद्देश्य में लाभदायी होगा। ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के कई मोर्चों पर भारी मात्रा में भारतीय सैन्य टुकड़ियों की तैनाती की। जिसमें से ढेर सारे सैनिक मारे गए और गंभीर रूप से घायल हुए। जीवन की हानि के अलावा भारत को युद्ध से उत्पन्न विशाल ऋण का भार भी सहन करना पड़ा। भारत से भू-राजस्व, नमक कर तथा अन्य करों के रूप में राजस्व का एक बड़ा भाग उगाहा गया। युद्ध के दौरान कर बढ़े और पहली बार 1917 में एक सुपरटैक्स भी लगाया गया। जैसा कि बी.आर. टॉमलिंग्स ने गणना की है, प्रति व्यक्ति कर का भार (जिसमें भू-राजस्व शामिल नहीं था) 1914-15 के 1.5 रुपए से बढ़कर 1918-19 में 2.5 रुपए से थोड़ा ही कम रह गया। युद्ध की अवधि के दौरान भारत

* इकाई लेखक - प्रो. स्वराज बसु

सरकार ने 105 करोड़ रुपए से ऊपर के नए स्थायी ऋण का भार उठाया तथा 108 करोड़ रुपए से ऊपर के अल्पकालिक ऋण का भार ग्रहण किया। 1914 से 1917 के दौरान जहाँ ब्याज अदायगी पर इसका वार्षिक खर्च 1.8 करोड़ रुपए के आस-पास था, वह 1917-18 के दौरान 10.9 करोड़ रुपए तथा 1918-19 के दौरान 12.2 करोड़ रुपए हो गया।

ऊपर युद्ध के कारण जिस कर-भार की चर्चा की गई है, उसने मुख्यतया आम आदमी को ही प्रभावित किया। करों की वजह से खाद्य पदार्थों की कीमतों में हुई वृद्धि तथा सैनिकों के भोजन हेतु खाद्य वस्तुओं के निर्यात ने भारत की जनता के कष्टों को और अधिक बढ़ाया। यह भारत के विभिन्न भागों में फसल उगाही में विफलता का भी दौर था। युद्ध की अवधि के दौरान न सिर्फ गरीब किसान और मज़दूर ही पीड़ित हुए अपितु कई भू-स्वामी किसानों ने अपने ज़मीन का मालिकाना हक अ-जोतदार वर्गों के हाथों खो दिया जिन्होंने युद्ध के दौरान सट्टेबाजी के व्यापार में मुनाफा कमाया। युद्ध के दौरान बड़े औद्योगिक घरानों ने उद्योगों के विकास के साथ-साथ लाभ अर्जित किया, परन्तु मूल्य वृद्धि तथा घटती हुई मज़दूरी की दर की वजह से मज़दूर वर्ग पीड़ित ही रहा। इसके परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न भागों में मज़दूरों की हड़तालें हुईं अतः यदि कोई भारतीय जनता के आर्थिक जनजीवन पर युद्ध के तात्कालिक परिणामों का असर देखना चाहे, तो सामान्यता जो छवि सामने आती है, वह असंतोष और मोहभंग की है। आर्थिक कठिनाइयों के अलावा भारतीयों की सेना में जबरन भर्ती तथा युद्ध के मोर्चे पर हुई उनकी दुर्दशा ने भारतीयों के मनो-मस्तिष्क को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलित कर दिया। तथापि, यह भी एक मान्यता है कि भारतीय ऊपरी कुलीन वर्ग और शहरी मध्यम वर्ग ने इस आशा के साथ ब्रिटिश शासन का युद्ध के क्रियाकलापों में समर्थन किया कि युद्धोपरांत उन्हें भारत में सत्ता की शक्तियों का साझा करने हेतु ब्रिटिश शासन से कुछ छूटें मिल सकेंगी। इतिहासकार ह्यूज टिंकर के मतानुसार : '1914 में युद्ध के विस्फोट ने भारत में लोगों के प्रत्येक वर्ग से वफादारी और समन्वय का एक असामान्य प्रदर्शन देखा। यह अपेक्षा तो थी कि राजा और किसान संकट की घड़ी में ब्रिटिश राज के प्रति निष्ठा का प्रदर्शन करेंगे, परन्तु शहरी मध्य वर्ग ने भी ब्रिटिश हितों के समर्थन हेतु होड़ लगा दी और क्रांतिकारियों के कुछेक इधर-उधर छिटके तत्वों ने ही ब्रिटेन की कठिनाइयों की संभावना का फायदा उठाकर औपनिवेशिक शक्ति को उखाड़ फेंकने की कोशिश की। तब भी युद्ध के मध्यवर्ती वर्षों में मोहभंग की मनोदशा जड़ जमा चुकी थी।'

यह मानना उचित प्रतीत नहीं होता कि भारतीयों के प्रत्येक वर्ग से ब्रिटिश सरकार के प्रति उसके युद्ध से संबंधित क्रियाकलापों के लिए 'निष्ठा और समन्वय का असामान्य प्रदर्शन' था परन्तु भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के एक वर्ग की यह स्पष्ट सोच थी कि ब्रिटिश शासन के युद्ध संबंधी क्रियाकलापों का समर्थन स्व-शासन की प्राप्ति में उनकी सहायता करेगा। राष्ट्रवादी नेता उस स्थिति में यह पहचानने में चूक गए कि युद्ध में शामिल राष्ट्र मूलतः अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की रक्षा हेतु युद्ध कर रहे थे, उपनिवेशीकृत लोगों के हितों की रक्षा के लिए नहीं। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि सामान्यतः युद्ध ने भारतीयों के बीच असंतोष को निर्मित किया तथा भारतीय राष्ट्रवादी नेतृत्व को स्व-शासन हेतु संघर्ष करने के लिए रणनीति के पुनर्निर्माण का अवसर मुहैया कराया। युद्ध के दिनों में ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए क्रांतिकारी आंदोलनों में बढ़ोतरी भी हुई। एक अन्य महत्वपूर्ण विकास था होमरूल आंदोलन का उदय।

9.3 होमरूल आंदोलन

भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के सामने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो अलग धड़ों—नरमपंथी और गरमपंथी में विभाजन तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना के रूप में महत्वपूर्ण चुनौतियाँ आईं। प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने से कई राष्ट्रवादी नेताओं ने एक ऐसा अवसर देखा जब विभिन्न हितों से जुड़े हुए वर्गों को इकट्ठा करके स्व-शासन की प्राप्ति के लिए गंभीर प्रयास किए जा सकें। कांग्रेस में गरमपंथियों की आवाज़ अरविंदो घोष, विपिन चंद्र पाल और बाल गंगाधर तिलक जैसे नेताओं की अनुपस्थिति में कमजोर पड़ गई। जब 1914 में तिलक जेल से रिहा हुए तो उनका यह मत था कि कांग्रेस के समर्थन के बिना ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक प्रभावी आंदोलन को संचालित करना और बनाए रखना मुश्किल होगा। परन्तु फिरोजशाह मेहता जैसे नरमपंथी नेता गरमपंथियों की कांग्रेस में वापसी के पक्ष में नहीं थे। तब भी कांग्रेस के अंदर यह मत ज़ोर पकड़ रहा था कि नरमपंथ और गरमपंथ का मनमुटाव तत्कालीन संदर्भ में अप्रासंगिक हो चुका था, एक ऐसे समय में जब ब्रिटिश शासन का एकजुट विरोध स्व-शासन की प्राप्ति में सहायक हो सकता था। इस पृष्ठभूमि में एनी बेसेंट के नेतृत्व में मद्रास में तथा तिलक के नेतृत्व में महाराष्ट्र में भारत के लिए स्वशासन की प्राप्ति हेतु शुरू हुए आंदोलनों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

एनी बेसेंट थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष थीं जिसका मुख्यालय मद्रास में था। थियोसोफिकल सोसायटी की मादाम ब्लावट्स्की के प्रभाव में आकर वे एक थियोसोफिस्ट हो गईं। वे स्थायी रूप से भारत में ही बस गईं। 1914 में कांग्रेस में शामिल होकर वे शैक्षणिक और सामाजिक-धार्मिक गतिविधियों से मुड़कर राजनीति के क्षेत्र में आईं। उन्होंने गरमपंथियों के कांग्रेस में पुनर्वापसी हेतु कांग्रेस नेताओं को मनाने की तथा धरना प्रदर्शनों के दबाव तले ब्रिटिश सरकार को स्वशासन की मांग को मानने हेतु मजबूर करने की योजना बनाई। इसी बीच 1914 में जेल से अपनी रिहाई के बाद तिलक ने यह महसूस किया कि उनकी पूर्ववर्ती गरमपंथी नीतियों के स्थान पर अब एक व्यापक जनाधार वाले राजनैतिक आंदोलन को विकसित करने की आवश्यकता है। तिलक को एनी बेसेंट की सोच के तरीकों में राजनीतिक गतिविधियों के आधार के निर्माण हेतु एक अवसर दिखाई दिया परन्तु इसके साथ-साथ वे अपने लिए एक स्वतंत्र राजनीतिक आधार बनाए रखने हेतु भी सावधान थे। अतः यद्यपि उन्होंने एनी बेसेंट के होमरूल लीग बनाने के निर्णय का समर्थन तो किया परन्तु उसके साथ-साथ भारत के मराठी भाषी भागों के लिए एक अलग होमरूल लीग के निर्माण की अपनी योजना की भी घोषणा की। एनी बेसेंट की होमरूल लीग मद्रास में स्थित थी और इसका विस्तार संपूर्ण भारत में था। 1917 में इन दोनों लीगों की सदस्य संख्या 60 हजार तक पहुंच गई।

अंग्रेजी और देसी भाषा दोनों के समाचार पत्रों और पैम्प्लेटों के ज़रिए होमरूल लीग ने लोगों को सबसे पहले अखिल भारतीय स्तर पर एक संगठित राजनैतिक आंदोलन हेतु शिक्षित करना चाहा ताकि ब्रिटिशों पर होमरूल की मांग को मानने के लिए दबाव बनाया जा सके। "न्यू इंडिया" समाचार पत्र के संपादक के रूप में बेसेंट औपनिवेशिक सरकार की आलोचक थीं और उन्होंने इस बात की वकालत की कि खंडित सुधारों की अपेक्षा भारतीयों को स्वशासन अथवा होमरूल की मांग हेतु संगठित होना चाहिए। होमरूल के लिए एक शक्तिशाली जनमत निर्माण हेतु प्रयास किए गए। इसने एक तरह से परवर्ती दौर के राष्ट्रवादी आंदोलन में जनआधारित राजनीति के लिए आधारभूमि तैयार की। ऐसा कहा जाता है कि कांग्रेस द्वारा चलाए गए पूर्ववर्ती धरना प्रदर्शनों की तुलना में इस आंदोलन

(होमरूल) में भाग लेने वाले लोगों की संख्या अधिक थी और उनमें उत्साह और भावनाएँ अधिक प्रखर थीं। दोनों ही संगठनों में सदस्यता धीरे-धीरे बढ़ती गई और इनकी बढ़ती हुई शक्ति को ब्रिटिश सरकार ने भी महसूस किया। बाम्बे में सरकार ने तिलक के ऊपर इस आधार पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की कि होमरूल की माँग राजद्रोह है तथा मद्रास सरकार ने बेसेंट का बाम्बे प्रेसीडेंसी तथा सेंट्रल प्रोविंसेज और बेरार में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। 1917 में बेसेंट को मद्रास सरकार द्वारा नज़रबंद कर दिया गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने बेसेंट की गिरफ्तारी का कड़ा विरोध किया। वे उसी वर्ष, बाद में रिहा कर दी गईं। सरकारी दमन ने होमरूल आंदोलन को लोकप्रियता अर्जित करने में मदद की। 1917 में कलकत्ता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में बेसेंट को अध्यक्ष चुन लिया गया।

1917 में कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर दिया गया एनी बेसेंट का भाषण (कुछ अंश)

कांग्रेस के इतिहास में पहली बार, आपने एक ऐसे व्यक्ति को अपना अध्यक्ष चुना है जो कि जब आपने चुनाव किया, सरकारी कोप के भारी प्रतिबंध के अंतर्गत था और जिसे सार्वजनिक सुरक्षा के लिए खतरनाक व्यक्ति मानकर नज़रबंद कर दिया गया था। जब मुझे अपमानित किया जा रहा था आपने मुझे आदर के साथ ताज पहनाया। जब मुझे बदनाम किया जा रहा था, आपने मेरी ईमानदारी और सद्विश्वासों में विश्वास किया। जब मुझे नौकर-शाही की शक्ति के पैरों तले कुचला गया तब आपने मेरी अपने नेता के रूप में जय-जयकार की। जब मैं मूक थी और खुद के बचाव में असमर्थ थी, आपने मेरा बचाव किया और मेरे लिए मेरी रिहाई को जीता। मैं निम्नतम तरीके से सेवा करके ही गौरवान्वित थी परन्तु आपने मुझे ऊँचा उठाया और अपने चयनित प्रतिनिधि के रूप में मुझे विश्व के सामने ला दिया। मेरे पास शब्द नहीं हैं जिनसे मैं आपको धन्यवाद दे सकूँ, न ही वह वाक्पटुता है जिससे मैं अपना ऋण उतार सकूँ। मेरे कार्य निश्चित रूप से मेरे लिए बोलेंगे क्योंकि मेरे पास शब्दों की गरीबी है। आपके उपहार को मैं मातृभूमि की सेवा में समर्पित करती हूँ। मैं अपने जीवन को नए सिरे से यह संस्कार दूंगी कि अपने कार्यों से उसकी पूजा कर सकूँ। मेरे पास जो भी है और मैं जो भी हूँ, उसे मैं माता की वेदी पर न्योछावर कर दूंगी। और हम साथ-साथ अश्रु बहायेंगे, शब्दों से ज्यादा कार्यों के द्वारा: बन्दे मातरम्।

भारत होमरूल की माँग क्यों कर रहा है?

भारत होमरूल की माँग दो कारणों से कर रहा है, एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण, दूसरा कम महत्वपूर्ण लेकिन आवश्यक : पहला, क्योंकि स्वतंत्रता हर राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है; दूसरा, क्योंकि उसके सबसे महत्वपूर्ण हित बिना उसकी सहमति के ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के अधीन कर लिए गए हैं; और उसके संसोधन उसकी महानतम आवश्यकताओं के लिए नहीं प्रयोग किए जा रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा पर खर्च की तुलना में उसकी फौज पर खर्च किए गए धन का उल्लेख काफी होगा, वह भी देशीय रक्षा के लिए नहीं, अपितु साम्राज्य संबंधी उद्देश्यों के लिए।

स्रोत : एनी बेसेंट दि केस फॉर इंडिया, www.fullbooks.com पर

होमरूल लीग की स्थापना की प्रथम वर्षगाँठ पर, 1917 में नासिक में तिलक द्वारा दिया गया भाषण

मैं आत्मा से युवा यद्यपि शरीर से वृद्ध हूँ। मैं यौवन के इस विशेषाधिकार को खोने की इच्छा नहीं रखता। आज मैं जो भी कहने जा रहा हूँ वह सनातन रूप से युवा है। शरीर वृद्ध, निर्बल हो सकता है, और यह नष्ट हो सकता है परन्तु आत्मा अमर है। उसी प्रकार से, यदि हमारे स्वशासन क्रियाकलापों में एक स्पष्ट शांति है, तो इसके पीछे जो आत्मा की स्वतंत्रता है, वह अनन्त और अविनाशी है, और यह हमारे लिए स्वतंत्रता की रक्षा करेगी। स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए यह जब तक मेरे अंदर जागृत है, मैं वृद्ध नहीं हूँ। कोई हथियार इस आत्मा को काट नहीं सकता, न अग्नि इसे जला सकती है, न जल इसे भिगो सकता है, न वायु इसे सुखा सकती है। हम स्वशासन माँग रहे हैं और हमें यह पाना होगा। जिस विज्ञान का अंत स्वशासन में होता है, वह राजनीति का विज्ञान है, वह विज्ञान नहीं जिसका अंत दासता में होता है। देश का 'वेद' राजनीति का विज्ञान है। तुम्हारे पास एक आत्मा है और मैं केवल इसे जगाना चाहता हूँ। मैं वो आँखें फोड़ देना चाहता हूँ जो घमंडी, धूर्त और स्वार्थी लोगों द्वारा झुकाई गयी हैं। राजनीति के विज्ञान के दो भाग हैं। पहला दैवीय है और दूसरा दानवी। एक राष्ट्र की दासता दानवता का निर्माण करती है। राजनीति के विज्ञान के दानवी भाग के लिए कोई नैतिक कारण नहीं हो सकता। जो राष्ट्र इसका औचित्य सिद्ध करे, वह ईश्वर की नज़र में पाप का भागी है। कुछ लोगों के पास साहस होता है, कुछ के पास नहीं कि उनके लिए क्या हानिकारक है, वो इसकी घोषणा कर सकें। राजनैतिक और धार्मिक शिक्षा ज्ञान के इस सिद्धांत को प्रदान करने में समाहित है। धार्मिक और राजनीतिक शिक्षा अलग नहीं है, यद्यपि वह विदेशी शासन के कारण ऐसे प्रतीत होती है। सभी दर्शन राजनीति के विज्ञान में समाहित हैं।

कौन स्वशासन का अर्थ नहीं जानता? कौन इसे नहीं चाहता? क्या आप यह पसंद करेंगे कि मैं आपके घर में घुस आऊँ और आपके किचन पर कब्ज़ा कर लूँ। मेरा अपने घर के मामलों का प्रबंधन करना मेरा अधिकार है। हमें कहा गया कि हम स्वशासन के लिए उपयुक्त नहीं हैं। एक सदी बीत गई और ब्रिटिश शासन ने हमें स्वशासन के लिए योग्य नहीं बनाया; अब हम स्वयं अपने प्रयास करेंगे और स्वयं को इसके लिए योग्य बनाएंगे। निरर्थक बहाने बनाना, किसी प्रलोभन को पकड़कर रखना और अन्य प्रस्ताव बनाना अंग्रेजी नीतियों पर लांछन लगाना होगा। इंग्लैंड भारत की सहायता से बेल्जियम के छोटे से राज्य की रक्षा करने की कोशिश कर रहा है; तब यह किस प्रकार कह सकता है कि हमारे पास स्वशासन नहीं होना चाहिए? वो जो हममें कमियाँ निकालते हैं, लोभी लोग हैं। लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो सर्वदयालु भगवान में भी कमियाँ निकालते हैं। हमें बिना किसी चीज़ की चिंता किए अपने राष्ट्र की आत्मा को बचाने के लिए कड़ी मेहनत करनी होगी। हमारे देश की भलाई इस जन्मसिद्ध अधिकार की रक्षा करने में ही है। कांग्रेस स्वशासन प्रस्ताव पारित कर चुकी है। व्यावहारिक राजनीति में कुछ निरर्थक आपत्तियाँ हमारे स्वराज की इच्छा का विरोध करने के लिए उठाई गई थीं। इसमें से एक आपत्ति है कि हमारे लोगों का एक बड़ा हिस्सा अशिक्षित है; परन्तु मेरी सोच में इसे हमारे रास्ते के बीच की अड़चन बनने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। यदि हमारे देश के अशिक्षित वर्ग में स्वराज की अस्पष्ट संकल्पना भी है, तो वह भी हमारे लिए पर्याप्त है, ठीक वैसे ही जैसे यदि उनको भगवान की धुंधली-सी भी अनुभूति है, तो उनके साथ सब कुछ ठीक होता

हैं; जो अपने कार्यकलापों को संचालित करने में सक्षम हैं, वे अशिक्षित हो सकते हैं; परन्तु वे मूर्ख नहीं हैं। वे उतने ही बुद्धिमान हैं जितना कोई अन्य पढ़ा-लिखा व्यक्ति और यदि वे अपनी तात्कालिक जरूरतों को समझ सकते हैं तो स्वराज के सिद्धांत को ग्रहण करने में भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि सिविल कानून में अशिक्षा कोई अयोग्यता नहीं है तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि प्रकृति के नियमों में भी ऐसा न हो। ये अशिक्षित भी हमारे भाई हैं, उनके पास भी समान अधिकार हैं तथा वे भी समान आकांक्षाओं से प्रेरित हैं। अतः यह हमारा कर्तव्य है कि जनसामान्य को जागृत करें, स्थितियाँ बदल चुकी हैं और अनुकूल भी हैं। 'अभी नहीं तो कभी नहीं'; की आवाज़ आगे बढ़ चुकी है। निष्कपटता और सांवैधानिक प्रदर्शन ही आपसे अपेक्षित हैं। पीछे मत मुड़िये और विश्वास के साथ बुनियादी मुद्दे को सर्वशक्तिमान की कृपा पर छोड़ दीजिए।

स्रोत: रवीन्द्र कुमार (सं.) सेलेक्टेड डॉक्यूमेंट्स ऑफ बालगंगाधर तिलक, वॉल्यूम-3

यद्यपि होमरूल आंदोलन का समर्थन मुख्यतः मध्यवर्ग के बीच था फिर भी यह उन क्षेत्रों तक भी पहुंचने में सफल रहा, जहाँ तब तक राष्ट्रीय राजनीति नहीं पहुंच पाई थी। तिलक और बेसेंट का यह मत था कि राष्ट्रवादियों के विभिन्न धड़ों के बीच एकता के साथ-साथ राष्ट्रवादी समर्थन के आधार का विस्तार भी आवश्यक है, नहीं तो ब्रिटिश एक पक्ष को दूसरे पक्ष से लड़ायेंगे तथा सुधारों से इनकार कर देंगे। सरकारी समझ के अनुसार होमरूल आंदोलन पहली बार ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक एकीकृत, संगठित और उग्र अखिल भारतीय प्रतिरोध था। निश्चित रूप से होमरूल आंदोलन कांग्रेस की पूर्ववर्ती राजनीति से प्रयाण था। यद्यपि शायद इसने उग्र राष्ट्रवाद की विशेषताओं को आगे नहीं बढ़ाया। यह आरोप लगाया जाता है कि होमरूल आंदोलन ने नस्लीय भावनाओं को उत्तेजित करने की कोशिश की तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्वेष को प्रोत्साहित किया। एनी बेसेंट द्वारा शुरू किए गए इस आंदोलन के प्रति सरकारी नीतियों का विश्लेषण करते हुए इतिहासकार पीटर रॉब ने यह दर्शाया है कि बेसेंट और तिलक द्वारा चलाए गए इस आंदोलन को सुलझाने के लिए सरकार का मत दमन और छूट के बीच बंटा था। जहां एक तरफ स्थानीय सरकार के अंतर्गत आने वाले एक वर्ग ने होमरूल आंदोलन को राजद्रोह माना, तो दूसरी तरफ सरकार के ही अंदर कुछ लोग सरकार द्वारा अपनाए गए दमनकारी उपायों के फलस्वरूप इसे मिल रहे लोकप्रिय जनसमर्थन से चिंतित थे। स्थितियों की सावधानीपूर्वक समीक्षा करने के बाद राज्य सचिव एडविन मांटैग्यू ने स्वशासन की तरफ बढ़ने की घोषणा की और मांटैग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के रूप में प्रस्तावित योजना 1918 में प्रकाशित हुई। सरकार की तरफ से किए गए इस कार्य ने कांग्रेस में इस बात के लिए विभाजन पैदा कर दिया कि इन सुधारों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया दी जाए। सितंबर 1918 में आयोजित कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन में तर्क दिया गया कि सुधारों की माँग को बदलकर पाँच वर्षों में पूर्ण प्रांतीय स्वायत्तता का प्रावधान किया जाना चाहिए। परन्तु बेसेंट और तिलक दोनों ही कांग्रेस की राजनीति में पैठ बनाने में सफल नहीं हो सके और 1918 के बाद राष्ट्रीय राजनीति ने एक नया मोड़ लिया। होमरूल लीग की उपलब्धियों तथा विरासत पर टिप्पणी करते हुए यह कहा गया है कि 'इसने उत्साही राष्ट्रवादियों की एक पीढ़ी तैयार की जिसने आगे आने वाले वर्षों में राष्ट्रवादी आंदोलन की रीढ़ को निर्मित किया, जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में इसने एक व्यापक चरण में प्रवेश किया। होमरूल लीग ने शहर और देश के बीच सांगठनिक जुड़ाव निर्मित किया, जो बाद के वर्षों में अमूल्य सिद्ध हुआ। इसके अलावा होमरूल अथवा स्वशासन के विचार को लोकप्रिय बनाकर और इसे एक आम वस्तु बनाकर इसने देश में एक व्यापक राष्ट्रवाद समर्थक वातावरण उत्पन्न

किया (विपिन चंद्र और अन्य (सं.)), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष)। सुमित सरकार ने भी यह विचार किया है कि होमरूल प्रदर्शन का वास्तविक महत्व इसका नए क्षेत्रों, वर्गों और नयी पीढ़ी में विस्तार था।

9.4 लखनऊ समझौता

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक को स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन और उसके पश्चात् बंगाल के विभाजन, कांग्रेस का दो स्पष्ट वैचारिक समूहों में बंट जाना, मुस्लिम लीग की स्थापना तथा आजादी के प्राप्ति के उपाय के रूप में कट्टरपंथ में वृद्धि द्वारा चिन्हित किया जाता है। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लोकप्रिय जन असंतोष बढ़ता जा रहा था लेकिन उसी समय ब्रिटिश शासन को चुनौती देने हेतु एकता और संयुक्त प्रयासों का अभाव था। प्रथम विश्व युद्ध के विस्फोट ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध के क्रियाकलापों में भारतीय जनता की मदद मांगने के लिए मजबूर कर दिया और राजनीतिक रूप से चैतन्य भारतीयों ने इस अवसर का उपयोग स्वशासन की मांग हेतु दबाव बढ़ाने के लिए किया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विभिन्न भारतीय राष्ट्रवादी समूहों की अध्यारोही चिंता यह थी कि ब्रिटिश शासन का एकजुट प्रयासों द्वारा विरोध किया जाए। इस संदर्भ में हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच समन्वय की तरफ लखनऊ समझौते को एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में देखा जाता है।

मुसलमानों के प्रति निष्ठा दिखाते हुए प्रमुख रूप से मुसलमानों के हितों की रक्षा हेतु 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अनुयायियों के बीच भेद को जगजाहिर कर दिया। दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार ने 1909 के सुधार अधिनियम के जरिए मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल प्रदान करते हुए मुस्लिम अलगाववाद के वकीलों की विभाजनकारी भावनाओं को और प्रोत्साहित किया। मुस्लिम लीग का नेतृत्व भू-स्वामी अभिजात वर्ग के हाथों में था। हालांकि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारत के भीतर और बाहर कुछ निश्चित विकासों के साथ स्थितियाँ बदलनी शुरू हो गईं। 1911 में बंगाल के विभाजन और 1914 में ऑटोमन साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध में ब्रिटेन की संलिप्तता ने कई मुस्लिमों को यह एहसास करा दिया कि वे ब्रिटिश सरकार पर अब और भरोसा नहीं कर सकते। 1911 में इटली तथा तुर्की के बीच युद्ध, रूस द्वारा पर्शिया में मुसलमानों का नरसंहार और ब्रिटेन की तटस्थता ने मुसलमानों के अंदर यह एहसास पैदा कर दिया कि इस्लाम खतरे में है और तुर्की के टुकड़े करने में यूरोपीय शक्तियों की मिलीभगत है। मुस्लिम प्रेस ने इस 'खतरे में इस्लाम' के डर को प्रचारित करने में मदद की और कई मुस्लिम यदि ज़रूरत पड़ी तो इस्लाम की हिफाज़त के लिए अपनी ज़िंदगियाँ कुर्बान करने के लिए कृतसंकल्प हो गए। इस घटनाक्रम ने ऐसी स्थिति बनाने में मदद की जहाँ मुस्लिम लीग के भीतर राष्ट्रवाद की तरफ उन्मुख मुसलमान कांग्रेस और लीग के बीच मैत्री के लिए काम करने लगे। छोटी सी ज़मींदारी पृष्ठभूमि से आये वकीलों, पत्रकारों तथा अन्य से युक्त एक युवा संगठन औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध आंदोलन में कांग्रेस से हाथ मिलाने की आवश्यकता को महसूस करने लगा। लखनऊ में इस संगठन को 'युवा पार्टी' के नाम से जाना जाता था और वज़ीर हसन जो युवा मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते थे, मुस्लिम लीग पर नियंत्रण पाने में सफल रहे। उन्होंने लीग के उद्देश्यों को कांग्रेस के उद्देश्यों के करीब लाने की कोशिश की। मुस्लिम लीग की ड्राफ्ट सुधार योजना मुसलमानों के युवा समूह के प्रतिनिधित्व में तैयार की गई जिसमें अलग प्रतिनिधित्व की माँग के अतिरिक्त कांग्रेस से काफी समानता थी। कांग्रेस ने भी भीतरी मतभेदों के बावजूद लीग से मैत्री हेतु विचार किया। कांग्रेस पृथक् मुस्लिम हितों को सम्मान देने तथा मुस्लिमों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र को स्वीकार करने पर सहमत हो गई। कांग्रेस और लीग दोनों ही काम करने

योग्य राजनीतिक आम सहमति हेतु सुलह की मनोदशा में थे। 1915 में कांग्रेस और लीग दोनों के सदस्य बांबे में मिले और राष्ट्रीय सरकार के विचार का समर्थन किया गया। इसके उपरांत 1916 में लखनऊ में दोनों संगठनों की एक बैठक हुई और इस बैठक में दोनों ही आम संयुक्त माँग पर सहमत हुए तथा उनके बीच जो समझौता हुआ, उसे लखनऊ समझौते के रूप में जाना जाता है। स्व-शासन की माँग की घोषणा तात्कालिक लक्ष्य के रूप में हुई और कांग्रेस मुस्लिमों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की माँग को स्वीकार करने हेतु सहमत हो गई। लखनऊ समझौते के अनुसार मुसलमानों ने सात राज्यों में अलग निर्वाचन क्षेत्र स्वीकार किया, जिसमें वे अल्पसंख्यक थे तथा उन्हें पंजाब में निर्वाचित सीटों का आधा और केन्द्रीय विधानसभा में निर्वाचित सीटों का एक तिहाई हिस्सा मिला।

हालांकि हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच आलोचक भी थे जो कांग्रेस-लीग संधि का विरोध कर रहे थे। मुस्लिम भू-स्वामी वर्ग तथा उनके सहयोगी जिनके हितों की रक्षा ब्रिटिश कर रहे थे वे मुस्लिमों में बढ़ रहे राष्ट्रवादी भावों के प्रति आशंकित थे और कांग्रेस तथा लीग के बीच संधि को अपने लिए खतरे के रूप में देख रहे थे। उर्दू अखबारों, जैसे-अल-बशीर, दि अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गैजेट, अल-मिज़ान आदि ने एक निंदा अभियान शुरू किया। ऐसे अभियान का खंडन करते हुए 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक संपादकीय में जिन्ना ने लिखा, 'निश्चय ही उन मुसलमानों पर, जिन्होंने इस संगीन और अहम संकट के दौरान महान आत्म-संयम और नियंत्रण का प्रदर्शन किया, हिन्दू नेताओं के साथ-साथ अपनी मांगों को प्रस्तुत करने पर भरोसा किया जा सकता है। क्या इससे बेहतर मौका हो सकता है कि कांग्रेस और लीग एक ही स्थान पर मिल-बैठकर भारत के भविष्य पर साथ-साथ मंत्रणा करें?'

दूसरी तरफ कुछ प्रांतों में सामने आई हिन्दू सभाओं ने कांग्रेस लीग द्वारा प्रस्तावित सीटों के साझे की व्यवस्था की निंदा की। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में जहाँ मुसलमानों को परिषद में तीस प्रतिशत सीटों की अनुमति दी गई जबकि संख्या बल में वे जनसंख्या का सिर्फ चौदह प्रतिशत ही थे, प्रांत में क्रुद्ध प्रदर्शन हुए। विरोध के बावजूद लखनऊ समझौते ने कांग्रेस और लीग के बीच सहयोग की शुरुआत की तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संगठित अभियान शुरू करने हेतु एक मजबूत आधारभूमि मुहैया कराया। विभिन्न धार्मिक विश्वासों से संबंधित नेता मंदिरों और मस्जिदों की यात्रा के जरिए सांप्रदायिक सौहार्द के गुण को प्रदर्शित करने लगे। आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) के जिलाधीश जे.सी. स्मिथ जिन्होंने पहले कई सांप्रदायिक दंगे देखे थे ने 1917 में लिखा, 'आजमगढ़ जिले को इस बात के लिए धन्यवाद दिया जाना चाहिए कि दशहरा एवं मुहर्रम के त्यौहार बिना किसी उपद्रव के गुज़र गए। पिछले तीन सालों से इस संदर्भ में सरकार अत्यंत चिंतित थी और इस बात के लिए लोगों को श्रेय दिया जाना चाहिए कि इस प्रकार के नाजुक समय में विभिन्न समुदायों के बीच वैमनस्य का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया।'

कांग्रेस और लीग के गठजोड़ ने नौजवान मुसलमानों को कांग्रेस के नेतृत्व तले राष्ट्रवादी आंदोलन में भाग लेने की प्रेरणा दी और उसमें से कई तो राष्ट्रवादी प्रदर्शनों में सबसे आगे थे। यह ध्यान देना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि प्रथम विश्व युद्ध की अवधि के दौरान भारत में राष्ट्रीय आंदोलन ने विभिन्न मतों एवं समुहों को एक साथ लाकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक संगठित चुनौती प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की। होमरूल आंदोलन जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की वह लखनऊ समझौते के पश्चात् कांग्रेस और लीग की एकजुटता से और मजबूत हुआ। इस संदर्भ में कांग्रेस द्वारा लीग की मांगों को मान लेने की आलोचनाओं का जवाब देते हुए तिलक ने कहा,

‘कुछ भद्र लोगों द्वारा यह कहा गया है कि हम हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों के सामने कुछ अधिक ही झुक गए हैं। निश्चित रूप से जब मैं यह कहता हूँ कि हमें इतना अधिक नहीं झुकना चाहिए था, तो मैं हिन्दुओं की भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व करता हूँ..... जब हमें एक तीसरे पक्ष से लड़ना है, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि हम इस मंच पर संगठित होकर खड़े रहें, प्रजाति में संगठित, धर्म में संगठित, राजनीतिक मत के अलग अलग तरीकों से संबंधित होने के बावजूद भी।’

लखनऊ समझौते के प्रभाव के संबंध में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। ह्यूज एफ. ओवेन ने एक लेख में निम्नलिखित अवलोकन प्रस्तुत किया है:

‘..... समझौते ने कांग्रेसियों, हिन्दुओं तथा अन्य और मुस्लिम लीग के बीच सार्वजनिक कलह के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र को हटाकर इस नये सहयोग के लिए एक आधार प्रस्तुत किया। दोनों संगठनों के सदस्य जो एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में यकीन रखते थे, संयुक्त प्रांत और अन्य हिन्दूबहुल प्रांतों में हिन्दू तथा संयुक्त प्रांत बंगाल तथा पंजाब में मुसलमान राष्ट्रवादी लक्ष्यों में सहयोग हेतु विभिन्न स्तरों पर बलिदान देने को सहमत हुए और इस तरह आपसी विश्वास के एक ऐसे माहौल को निर्मित करने में सहायक हुए जिसके तहत हिन्दू और मुस्लिम रोलेट और खिलाफत प्रदर्शनों में एकजुट हो सके समझौते ने उस समय के लगभग सभी भारतीय राजनेताओं द्वारा एक राजमर्मज्ञ का प्रयास निर्मित किया जिसमें मुसलमानों की एक भारी संख्या के भय तथा वे जिस भारत का निर्माण करना चाहते थे, उसकी प्रकृति से संबंधित विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच की मुठभेड़ की समस्या से युक्त था। यह एक ऐसा प्रयास था जिसमें भाग लेने वालों ने स्वेच्छा से कुछ समय के लिए अपने हितों और सिद्धांतों के साथ समझौता किया और उनका बलिदान किया ताकि स्वशासन के व्यापक लक्ष्य हेतु संगठित रूप से कार्य किया जा सके।’ (ह्यूज एफ. ओवेन, निगोशियेटिंग दि लखनऊ पैक्ट, दि जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़, वॉल्यूम 31, नं. 3, मई 1972)।

मुशिरुल हसन इस बात से सहमत हैं कि इस समझौते ने कांग्रेस तथा लीग के मध्य प्रमुख राजनैतिक और सांविधानिक मुद्दों पर सहयोग की शुरुआत की। तथापि उनका मानना है कि :

‘सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के संदिग्ध मुद्दे पर लखनऊ समझौते में बातचीत के ज़रिए कांग्रेस ने उन बातों को वैधता प्रदान कर दी जिन्हें बाद में “अलगाववादी” और “सांप्रदायिक” मांगें कहकर उपहास किया गया। सीमित क्षेत्रीय और सांप्रदायिक मसलों को खुद के ऊपर हावी होने देने की अनुमति देकर कांग्रेस ने एक ऐसी जगह निर्मित कर दी जिसमें वह जिस लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष संरचना को निर्मित करने का प्रयास कर रही थी, को नष्ट करने के जोखिम के बावजूद भी इन मसलों को समायोजित करना पड़ा। ठोस वैचारिक अभियान के ज़रिए विभाजनकारी गतिविधियों को दबाने के बजाय कांग्रेस तात्कालिक राजनीतिक लाभ हेतु जल्दबाजी में किए गए समझौते के लिए राजी हो गई।’ (मुशिरुल हसन, नेशनलिज्म एण्ड कम्यूनल पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1885–1930)

फ्रांसिस रॉबिन्सन द्वारा किए गए आकलन के अनुसार लखनऊ समझौते के पश्चात् मुस्लिम लीग को अखिल भारतीय खिलाफत संगठन द्वारा आच्छादित कर लिया गया तथा हिन्दू मुसलमानों के मामलों में बड़ी भूमिका निभाने लगे एवं मुसलमान कांग्रेस के कार्यकलापों में ज्यादा बड़ी भूमिका निभाने लगे।

इन आकलनों से सहमत या असहमत हुआ जा सकता है, परन्तु मुस्लिम लीग की स्थापना के उपरांत भारतीय राजनीति में ध्रुवीकरण को यदि ध्यान में रखा जाए तो इस परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस की मुस्लिम लीग से हाथ मिलाने की नीति ने निश्चित रूप से ब्रिटिश विरोधी राजनीतिक आंदोलन को मजबूती प्रदान की। यदि राष्ट्रीय आंदोलन का केंद्रीय लक्ष्य स्वशासन हेतु प्रयास करना था तो मुस्लिम लीग के साथ रणनीतिक बातचीत तथा उसकी पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग को स्वीकार कर लेने के बावजूद भी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच इच्छित एकता के निर्माण में मदद मिली। इस समझौते का लक्ष्य था कि मुसलमानों के मन से बहुसंख्यक प्रभुत्व के भय को निकाला जा सके। इसके साथ-साथ यह भी महसूस किया गया कि लीग के अलगाववादी एजेंडे को मान लेना इसके भविष्य पर पड़ने वाले नतीजों से अनभिज्ञता का परिणाम था। कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा लिए गए संयुक्त निर्णयों के दबाव को ब्रिटिश सरकार ने भी महसूस किया। राष्ट्रवादी चुनौती के बढ़ते हुए ज्वार को वश में करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ नये सुधारवादी नीतियों की घोषणा की जिसमें स्वशासित संस्थाओं के क्रमिक विकास का वादा किया गया।

9.5 सारांश

इस इकाई में हमने भारत पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव पर चर्चा के साथ शुरुआत की। ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा होने के नाते ब्रिटिशों के द्वारा युद्ध के प्रयासों में भारत की श्रम-शक्ति तथा भौतिक संसाधनों का प्रयोग किया गया। युद्ध के कारण बहुसंख्यक भारतीयों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसने आम भारतीयों के बीच असंतोष का निर्माण किया और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रतिनिधित्व को ब्रिटिशों की आवश्यकता के समय भारत की सहायता के बदले में स्वशासन के लिए दबाव बनाने का मौका मिल गया।

बालगंगाधर तिलक और एनी बेसेंट ने अपने-अपने सांगठनिक और समर्थक धड़ों के आधार पर स्वशासन की मांग के समर्थन में होमरूल लीग को प्रारंभ करने का निर्णय लिया। होमरूल लीग आंदोलन कांग्रेस आंदोलन के जनाधार को विस्तार देने में सफल हुआ। यह वह समय भी था जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक संयुक्त विपक्ष के निर्माण हेतु कुछ विशिष्ट उभयनिष्ठ मांगों पर हाथ मिलाने को सहमत हुए। युद्ध की अवधि के दौरान राष्ट्रीय राजनीति में हुए इन परिवर्तनों ने निश्चित रूप से एक विस्तृत जनाधार वाले आंदोलन की जमीन तैयार की तथा 1919 के सुधार अधिनियम के रूप में कुछ नयी छूटें प्राप्त करने में भी सफल हुए।

9.6 अभ्यास

- 1) भारत पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव की चर्चा कीजिए।
- 2) होमरूल लीग पर एक टिप्पणी लिखें।
- 3) लखनऊ समझौता क्या था? इसके महत्व पर चर्चा कीजिए।

इकाई 10 गाँधी का उदय*

संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 दक्षिण अफ्रीका में गाँधी और उनके राजनीतिक प्रयोग
- 10.3 गाँधी का राजनीतिक दर्शन
- 10.4 चंपारण सत्याग्रह
- 10.5 खेड़ा सत्याग्रह
- 10.6 अहमदाबाद सत्याग्रह
- 10.7 महत्व
- 10.8 सारांश
- 10.9 अभ्यास

10.1 प्रस्तावना

भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के उदय ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक नये चरण की शुरुआत को चिन्हित किया और यह चरण जन लामबंदी के युग के रूप में वर्णित किया गया। 1915 में भारतीय राजनीति में गाँधी के प्रवेश के पूर्व और 1893 से 1914 तक, वह दक्षिण अफ्रीका में थे जहाँ औपनिवेशिक शासकों द्वारा नस्लीय दम्भ प्रदर्शित किया गया और स्थानीय लोगों के शोषण ने गाँधी को उपनिवेशवाद के विरुद्ध युद्ध को गंभीरता से लेकर सोचने पर मजबूर किया। दक्षिण अफ्रीका में अपने संघर्ष के दौरान उन्होंने जन आंदोलन को नई दिशा देने हेतु अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित अपने राजनीतिक दर्शन को विकसित किया। भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा और धार्मिक विचारों का ज्ञान तथा लियो तोलस्तोय, जॉन रस्किन, रॉल्फ वाल्डो इमर्सन और हेनरी डेविड थोरे जैसे पश्चिमी विचारकों के अध्ययन ने उनके राजनीतिक विचारों को व्यापक रूप से आकार दिया।

आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं से आगे बढ़ते हुए गाँधी ने जन लामबंदी के ज़रिए राष्ट्रवादी राजनीति को नया अर्थ दिया। इस इकाई में हम आपको दक्षिण अफ्रीका में गाँधी के संघर्ष और उनके राजनीतिक विचारधारा के विकास के बारे में विस्तार से बताएँगे। फिर हम चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद में किसानों और मजदूरों के आंदोलन में गाँधी के हस्तक्षेप की चर्चा करेंगे। ये तीन आंदोलन गाँधी को भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के करीब लाए।

10.2 दक्षिण अफ्रीका में गाँधी और उनके राजनीतिक प्रयोग

‘सच कहूँ तो, दक्षिण अफ्रीका जाने के बाद ही मैं वो बन पाया, जो मैं अब हूँ।’ गाँधी के ये शब्द उनके राजनीतिक दर्शन और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भूमिका को समझने के लिए बहुत महत्व रखते हैं। गाँधी 1893 से 1914 तक दक्षिण अफ्रीका में थे और बीच में छोटे अंतराल के लिए वह भारत आए। दक्षिण अफ्रीका में अपने निवास के दौरान नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध लड़ने के लिए उन्होंने सहनशील प्रतिरोध और सविनय अवज्ञा

* इकाई लेखक – प्रो. स्वराज बसु

के अपने दर्शन को विकसित किया जो बाद में सत्याग्रह के रूप में जन लामबंदी के एक प्रभावी माध्यम के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इंग्लैंड से कानून में अपनी डिग्री पूरी करने के बाद गाँधी 1893 में एक युवा अटॉर्नी के रूप में दक्षिण अफ्रीका में भारतीय रहन-सहन और जीवनयापन के लिए एक कानूनी सलाहकार के रूप में एक भारतीय फर्म में कार्य करने हेतु उर्बन पहुँचे। दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान गोरों द्वारा नस्लीय दम्भ के अपने दर्दनाक व्यक्तिगत अनुभव ने उन्हें उस अपमान और कष्ट से परिचित कराया जिसे भारतीय दक्षिण अफ्रीका में भोग रहे थे।

उस समय दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मुख्य रूप से व्यापार में संलग्न थे और कई न सिर्फ शिक्षा बल्कि राजनीतिक दल से भी अनभिज्ञ थे। गाँधी ने उनकी राजनीतिक चेतना को सक्रिय करने तथा उनके अधिकारों तथा न्याय के लिए उन्हें लामबंद करने की कोशिश की। गाँधी 1894 में नटॉल इंडियन कांग्रेस की स्थापना करने में सहायक थे। उनके दुखों के समर्थन में जनमत निर्माण करने हेतु उन्होंने एक अखबार – दि इंडियन ओपिनियन की शुरुआत की। नटॉल, ब्रिटेन तथा भारत की सरकारों को याचिकाओं का मसौदा देकर और दि इंडियन ओपिनियन में नियमित टिप्पणियों के ज़रिए गाँधी ने किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध स्थानीय सरकार पर दबाव बनाने की कोशिश की। उन्होंने भारतीय व्यापारियों का प्रतिनिधित्व किया जिन्होंने 1885 के ट्रांसवाल लॉ (कानून) नं. 3 की प्रयोज्यता को प्रश्नांकित किया जो यह प्रतिबंधित करती थी कि वे कहां व्यापार कर सकते हैं तथा रह सकते हैं, तथा उन्होंने एक हजार से ज्यादा भारतीयों द्वारा हस्ताक्षरित याचिका औपनिवेशिक सेक्रेटरी को दी। 1896 में भारत के दौरे के समय गाँधी को नटॉल संसद द्वारा भेदभावपूर्ण विधान की नयी समस्या जो भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने के उद्देश्य से बनाई गई थी, से जूझने के लिए दक्षिण अफ्रीका वापस बुला लिया गया। जब 1896 में गाँधी भारत के छोटे से दौरे से वापस डरबन लौटे, उन्होंने शहरी सुविधा से दूर हटकर नया प्रयोग करने का निर्णय किया और डरबन के उत्तर में फिनिक्स में जातीय आबादी में रहे। लियो तॉलस्टाय, जॉन रस्किन और हेनरी डेविड थॉरो के लेखनों के अध्ययन ने अहिंसा और सविनय अवज्ञा आंदोलन पर गाँधी के विचारों को आकार दिया। 1906 में ट्रांसवाल सरकार ने कॉलोनी की भारतीय जनसंख्या को पंजीकरण के लिए बाध्य करने हेतु एक नये अधिनियम की घोषणा की। गाँधी ने उस वर्ष जोहानसबर्ग में हुए जन विरोध बैठक की अध्यक्षता करते हुए, पहली बार विरोध के अपने नये सिद्धांत, सत्याग्रह को ग्रहण किया। उन्होंने इकट्ठा हुए प्रदर्शनकारियों से हिंसात्मक विरोध करने के बजाय नये कानून की अवहेलना करने और ऐसा करने के लिए सज़ा भुगतने के लिए अपील की। यह संघर्ष वर्षों तक चला और गाँधी सहित हजारों भारतीय जेल गए। लेकिन फिर भी लोगों ने पंजीकरण से इनकार किया। जनता के हाहाकार ने अंततः दक्षिण अफ्रीकन जनरल जैन क्रिस्टियान स्मट्स को गाँधी के साथ समझौता करने के लिए मजबूर कर दिया और सरकार ने कुछ माँगों को स्वीकार कर लिया। गाँधी की जन लामबंदी, शांतिपूर्ण विरोध का विचार तथा सत्याग्रह की अवधारणा दक्षिण अफ्रीका में उनके संघर्ष के दौरान परिपक्व हुए और उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को नेतृत्व प्रदान करने के लिए अपेक्षित आत्मविश्वास दिया। आगे आने वाले भाग में हम आपसे गाँधी के राजनीतिक विचार की व्याख्या करेंगे और किस प्रकार वह अपने राजनीतिक दर्शन को विकसित करने हेतु विभिन्न स्रोतों को जोड़ने में सफल रहे।

10.3 गाँधी का राजनीतिक दर्शन

गाँधी द्वारा गुजराती में 1909 में लिखित 'हिन्द स्वराज' को बॉम्बे की सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया और तब 1910 में जोहानसबर्ग में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। संवाद

के रूप में लिखित यह पाठ गाँधी के राजनीतिक चिंतन की धारणाओं को स्पष्ट करता है। गाँधी ने पुस्तक को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है: 'मेरे मत में यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे एक बच्चे के हाथ में भी दिया जा सकता है। यह घृणा के स्थान पर प्रेम की शिक्षा देता है। यह हिंसा के बदले आत्म-त्याग को प्रतिस्थापित करती है। यह आत्मिक शक्ति को निर्दय शक्ति के आगे खड़ा करती है।' इस पुस्तक में गाँधी ने आधुनिक सभ्यता को विलासिता और उपभोग की बढ़ती हुई तीव्र इच्छा के लिए जिम्मेदार ठहराया जिसकी वजह से उनके अनुसार समाज में असमानता और गरीबी बढ़ी। हिंद स्वराज में जिन अन्य मुद्दों पर चर्चा की गयी, वे थे – स्वराज का अर्थ, इसे प्राप्त करने के लिए अहिंसक तरीके, सत्याग्रह, आध्यात्मिकता का महत्व, सहनशील प्रतिरोध, जिसे बाद में गाँधी ने अपने राजनीतिक आंदोलन के एक महत्वपूर्ण हथियार के रूप में प्रयोग किया, इसे उन्होंने पुस्तक में निम्नलिखित शब्दों में व्याख्यायित किया:

'सहनशील प्रतिरोध व्यक्तिगत पीड़ा द्वारा अधिकारों की प्राप्ति करने की एक प्रक्रिया है; यह हथियारों द्वारा प्रतिरोध का ठीक उल्टा है। जब मैं किसी ऐसी चीज को करने से मना करता हूँ जो मेरी चेतना के प्रतिकूल है तो मैं आत्मिक शक्ति का प्रयोग करता हूँ। परन्तु यदि मैं उस कानून का पालन नहीं करता और उसे तोड़ने हेतु दंड को स्वीकार करता हूँ तो मैं आत्मिक शक्ति का प्रयोग करता हूँ। इसमें स्व का त्याग सम्मिलित है।'

अहिंसा को स्पष्ट करते हुए गाँधी ने लिखा : 'अहिंसा का अपनी गतिशील स्थिति में अर्थ है आत्म पीड़ा। इसका मतबल दुर्जन की इच्छा के आगे विनीत समर्पण नहीं है, अपितु इसका अर्थ है उत्पीड़क की इच्छा के विरुद्ध अपनी संपूर्ण आत्मा को खड़ा करना। हमारे होने के नियम के अंतर्गत कार्य करते हुए एक व्यक्ति के लिए भी यह संभव है कि वह अपने सम्मान धर्म, आत्मा को बचाने के लिए एक अन्यायी साम्राज्य की संपूर्ण शक्ति को चुनौती दे सके।'

इस पाठ को पढ़ने के बाद हम गाँधी के जिन राजनीतिक विचारों को जान पाते हैं वे दो बातों से प्रभावित थे। पहला, वह भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, जिसमें वह पले-बढ़े थे, तथा दूसरा पाश्चात्य विचारकों का उनका अध्ययन। उन्होंने सफलतापूर्वक अपने दर्शन में भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने तथा भारत को आत्म निर्भर बनाने के लिए विभिन्न दृष्टियों को समन्वित किया। अपने एक निबंध 'महात्मा गाँधी के विचारों पर पारंपरिक प्रभाव' में ए.एल. बाशम ने यह पर्यवेक्षण किया है कि पाश्चात्य विचार मुख्यतः गाँधी की उन्हीं संकल्पनाओं को तीक्ष्ण कर सके जिन्हें उन्होंने भारतीय परंपरा से प्राप्त किया था। गाँधीवादी विचार की तीन प्रमुख संकल्पनाओं 'सत्य', 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' की व्याख्या करते हुए बाशम का तर्क है कि शास्त्रीय हिन्दुत्व, जैनागम, बौद्धागम, भक्ति आंदोलन ने गाँधी को इस हेतु उत्प्रेरित किया कि वे सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को अपनी अवधारणा के आधारभूत सिद्धांतों के रूप में निर्मित करें। बाशम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'गाँधी की कई संकल्पनाएँ भारतीय परंपरा से जुड़ी हुई थीं और शायद उन विचारों से विकसित हुई जिन्हें उन्होंने अपने बचपन तथा युवावस्था में ग्रहण किया था तथा जो पश्चिम से संपर्क के द्वारा उर्वर हुई तथा फलदायी हुई। उनके मतानुसार प्रारंभिक भारतीय सुधारकों की तुलना में गाँधीवादी विचारधारा की महानता हिन्दू धर्म के साथ गैर-भारतीय विचारों के तालमेल के उनके कौशल में और उन्हें पूर्णतया भारतीय चरित्र प्रदान करने में निहित है।'

गाँधी स्वयं अपने विचारों पाश्चात्य चिंतकों, जैसे – लियो तोलस्तोय, जॉन रस्कन आदि के प्रभावों को स्वीकार करते हैं। गाँधी ने पाश्चात्य सभ्यता के कई अन्य 19वीं शताब्दी के विचारकों का अध्ययन किया था जिनमें शामिल हैं— थॉमस कार्लाइल, हेनरी डेविड थोरो,

राल्फ वॉल्डो इमर्सन और राबर्ट शेरॉर्ड। इस तरह की कई रचनाएँ हिन्द स्वराज के परिशिष्ट में शामिल हैं। तोलस्तोय की पुस्तक 'किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदइन यू' और रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' ने उन्हें समाज के नये अर्थों, राज्य और राजनीति से परिचित कराया। 'द सर्मन ऑन दि माउंट' में जीसस के उपदेशों से प्रभावित होकर लियो तोलस्तोय ने प्रेम की स्वीकार्यता को मानवीय जीवन का केन्द्रीय मूल्य मानने की वकालत की तथा हिंसा के सभी रूपों और संस्थाओं को अस्वीकार किया। उन्होंने राज्य को शक्ति और बल प्रयोग का अवतार माना और शांतिपूर्ण प्रतिरोध के मूल्य पर बल दिया। तोलस्तोय की पुस्तक द्वारा लाये गये परिवर्तन को स्वीकार करते हुए गाँधी ने लिखा : 'यह चालीस साल पुरानी बात है, मैं संशयवाद और संदेह के गंभीर संकट से गुज़र रहा था, जब मुझे यह किताब मिली, 'दि किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदइन यू' और मैं इससे गहरे स्तर तक प्रभावित हुआ। उस समय मैं हिंसा में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। इसके अध्ययन ने मेरे संशयवाद का निषेध किया और मुझे अहिंसा का दृढ़ विश्वासी बना दिया।' भारत में राजनीतिक आंदोलन के दौरान अपने कार्यकलापों को निश्चित करने में समाज और राज्य पर तोलस्तोय की दृष्टि ने गाँधी को प्रभावित किया। 1904 में दक्षिण अफ्रीका में अपनी लंबी ट्रेन यात्रा के दौरान रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ने के बाद गाँधी ने लिखा, 'इसने मुझे सोचने के लिए मजबूर कर दिया। जोहानसबर्ग से डरबन की यात्रा 24 घंटे की थी। ट्रेन वहाँ शाम में पहुँची। मैं उस रात सो नहीं पाया। मैंने पुस्तक के आदर्शों के अनुसार अपने जीवन को बदलने का निश्चय कर लिया था।' रस्किन के विचार ने गाँधी को स्वयं द्वारा कार्य के प्रति प्रतिबद्धता तथा सामुदायिक जीवन पर सोचने को मजबूर किया जिसने उन्हें सामुदायिक जीवन हेतु पहला आश्रम – दि फीनिक्स सेटलमेंट—स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। गाँधी ने रस्किन द्वारा लिखित इस किताब का गुजराती में अनुवाद किया और इसका शीर्षक 'सर्वोदय' रखा। गाँधी न्याय के लिए उनके (रस्किन) जुनून और सामाजिक संगठन के सिद्धांत से बहुत प्रभावित थे, जिसकी रस्किन ने इस पुस्तक में वकालत की थी। उसमें प्रतिस्पर्धात्मक सामाजिक व्यवस्था और अन्यायपूर्ण आर्थिक प्रणाली की निंदा की थी। हेनरी डेविड थोरो की पुस्तक 'एसे ऑन दि ड्यूटी ऑफ सिविल ओबेडिएंस' ने संगठित सरकार के विरुद्ध अकाट्य तर्कों को और उन्नत किया तथा कहा कि यह मनुष्य एवं समाज में बुराइयों को प्रस्तुत करता है। उन्होंने राज्य के गलत कानूनों के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में सविनय अवज्ञा की वकालत की। गाँधी को थोरो के लेखन द्वारा में उनका स्वयं के सहनशील प्रतिरोध के गुण में विश्वास प्राप्त हुआ। गाँधी की सत्याग्रह की तकनीक के विकास में थोरो की सटीक भूमिका का निर्धारण शायद असंभव है, क्योंकि 10 सितंबर, 1935 को लिखे एक पत्र में गाँधी ने लिखा 'यह बयान कि मैंने सविनय अवज्ञा का अपना तरीका थोरो के लेखन से प्राप्त किया है, गलत है। दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध मुझे थोरो के सविनय अवज्ञा पर लिखे लेख के प्राप्त होने से काफी पहले से जारी था। परन्तु आंदोलन तब सहनशील प्रतिरोध के रूप में जाना जाता था। चूंकि यह अपर्याप्त था, अतः मैंने जब थोरो के महान निबंध के शीर्षक को देखा तो सत्याग्रह शब्द को गढ़ा, मैंने उनके मुहावरे का उपयोग अंग्रेजी पाठकों तक अपने संघर्ष को व्याख्यायित करने के लिए किया। परन्तु मैंने पाया कि "सविनय अवज्ञा" भी संघर्ष के संपूर्ण अर्थ को व्यंजित करने में असफल रही। अतः मैंने लोक प्रतिरोध के मुहावरे को ग्रहण किया।'

इस बिन्दु पर ध्यान देना आवश्यक है कि सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह जैसी संकल्पनाएँ जो भारत में गाँधीवादी राजनीतिक आंदोलनों का पर्याय हैं, की जड़ें भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में होने के साथ-साथ पश्चिम की बौद्धिक परंपरा से उनके परिचय का भी नतीजा थीं। गाँधी ने भारत में वृहद् स्तर पर राष्ट्रीय आंदोलन को विकसित करने की आवश्यकता को

ध्यान में रखते हुए विभिन्न विचारों को समन्वित करने की कोशिश की। उनकी तकनीक निश्चित सिद्धांतों पर आधारित थी जो पहले कभी राजनीतिक आंदोलन में प्रयोग नहीं किए गए थे। गाँधी को उनके विचारों में अंतर्विरोधों को लेकर की गई आलोचना के बारे में अच्छी तरह जानकारी थी और उनका उत्तर था, 'मेरे सत्य की खोज में मैंने कई विचारों का त्याग किया है और कई नई चीजें सीखी हैं... मुझे ऐसा एहसास नहीं है कि मैं अंतरात्मा में विकास नहीं कर पाया... जब कोई मेरे दो लेखनों के बीच किसी प्रकार की असंगति पाता है, यदि फिर भी उसे मेरे विवेक पर विश्वास है, यदि वह किसी समान विषय पर बाद वाले को प्राथमिकता देगा तो वह अच्छा करेगा।' औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्मित दमन, हिंसा और अन्याय की चुनौतियों का सामना करने के लिए गाँधी ने एक नयी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हेतु निःस्वार्थता, साहस तथा नैतिक बल पर आधारित आंदोलन के लिए अपील की। नागरिक प्रतिरोध के गाँधीवादी तरीके को उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारत के संघर्ष में विशिष्ट महत्व का माना गया और सत्याग्रह राजनीतिक एवं सामाजिक प्रतिरोधों को आवाज़ देने का प्रभावी माध्यम बन गया। गाँधीवादी राजनीति पर टिप्पणी करते हुए ज्यूडिथ ब्राउन का अवलोकन है कि 'जरूरतमंदों के लिए सेवा के उनके आदर्श ने यह संभावित कर दिया कि वे राजनीति में तभी भाग लेंगे जब वे उन गलतियों को ठीक कर सकें जिनसे जनसामान्य जूझ रहा है; परन्तु वे ही थे जिनके पास राजनीतिक छत्र से बाहर के लोगों तक पहुंचने की भी क्षमता थी ताकि सांस्थानिक राजनीति के नए तरीके को उसकी आरंभिक सीमितताओं की खोल से बाहर निकाला जा सके, और एक विशाल राजनीतिक राष्ट्र का निर्माण किया जा सके।

सत्याग्रह की तकनीक उन लोगों के मध्य भी कार्य करने के लिए अनुकूल थी जो सांस्थानिक राजनीति के अभ्यस्त न थे।' जिन संदर्भों और जटिलताओं के बीच गाँधी ने औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने के लिए भारतीय जनमानस में एकता कायम करने का प्रयास किया, जनसाधारण के प्रति उनकी चिंता तथा मुख्यधारा की राष्ट्रीय राजनीति में आम जनसमुदाय को लाने के उनके प्रयास राष्ट्रीय राजनीति में एक नये चरण की शुरुआत को चिन्हित करते हैं। आगे के प्रभागों में हम इस बात की चर्चा करेंगे कि किस प्रकार 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आने के पश्चात् गाँधी ने शोषण के विरुद्ध किसानों और मजदूरों के संघर्ष में भागीदारी की और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नयी दिशा देने हेतु किस प्रकार खुद के लिए स्थान बनाया।

10.4 चंपारण सत्याग्रह

दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध आंदोलन में गाँधी की सफलता ने उन्हें भारत में एक नेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया, जिसने आम जनता के लिए औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध लड़ाई की। दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के पश्चात्, शुरु में उन्होंने यह निश्चय किया कि वे गुजरात में अपना निवास बनाएंगे तथा लोगों के कल्याण हेतु कार्य करेंगे। उस समय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन दो धड़ों में बंटा हुआ था – नरमपंथी और गरमपंथी। तथा कुछ इस तरह के लोग भी थे जो स्वतंत्रता हेतु लड़ने के लिए क्रांतिकारी तरीकों में विश्वास रखते थे। मुस्लिमों की जनसंख्या के एक भाग ने केवल मुसलमानों के हितों के लिए कार्य करने हेतु मुस्लिम लीग की स्थापना की थी। इस पृष्ठभूमि में गाँधी ने जनता के अलग-अलग वर्गों के साथ संवाद स्थापित करके एक राजनीतिक आधार विकसित करने की कोशिश की। नरमपंथियों और गरमपंथियों की राजनीति स्वराज प्राप्ति हेतु गाँधी को राजी नहीं कर सकी, ना ही उन्हें हिंसा की राजनीति में विश्वास था। दक्षिण अफ्रीका में उनके सफल राजनीतिक आंदोलन से सत्याग्रह की शक्ति में पैदा हुए उनके विश्वास ने

उन्हें भारत में सत्याग्रह की शुरुआत के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने हेतु उत्साहित किया। बिहार के चंपारण में 1917 में नील बागान के मालिकों के विरुद्ध किसानों के आंदोलन ने गाँधी को वह इच्छित अवसर मुहैया करा दिया।

चंपारण उत्तरी बिहार में स्थित था, जिसके अंतर्गत बड़े-बड़े गांव और दो महत्वपूर्ण शहर मोतीहारी और बेतिया सम्मिलित थे। 1793 के स्थायी बंदोबस्त के अनुसार बेतिया, रामनगर और मधुबनी स्टेट ये तीन मालिक जिले की अधिकांश ज़मीन का नियंत्रण रखते थे परन्तु जमींदारों ने ज़मीन के प्रत्यक्ष प्रबंधन के स्थान पर अस्थायी अवधि के लिए कुछ धारकों को ज़मीन किराये पर दे दी। यूरोपीय अवधि-धारकों ने कृषि योग्य ज़मीन के एक बड़े भाग को अपने कब्जे में कर लिया था और अधिक मुनाफे की वजह से उन्होंने नील की खेती करना शुरू कर दिया। यूरोपीय बागान मालिकों ने भूमि की जुताई या तो प्रत्यक्ष रूप से की या किसान पट्टेदारों के ज़रिए। इस प्लांटर राज के सबसे बुरे शिकार पट्टेदार ही थे। 1917 में विश्व बाज़ार में नील की घटती हुई माँग ने पट्टेदारों पर दबाव और बढ़ाया और वे बाज़ार की गिरावट से सबसे बुरी तरह प्रभावित हुए। उस दौर की एक आधिकारिक रिपोर्ट कहती है 'वह सब कुछ जिन्हें किसानों को बेचना पड़ा, चावल, तिलहन या गुड़ उनके दाम या तो कम हो गए या बढ़े ही नहीं जबकि उसे जो कुछ खरीदना पड़ा, जैसे- कपड़े, नमक, कैरोसीन आदि अत्यधिक महंगे हो गये।' पट्टेदारों की सामान्य आर्थिक कठिनाइयों के अलावा, 'तीन कठिया' व्यवस्था ने किसानों के मध्य आकस्मिक बेचैनी को जन्म दिया। 'तीन कठिया' उस व्यवस्था का नाम था जिसमें एक किसान की प्रति बीघा ज़मीन का तीन कट्टा नील की खेती के लिए तय कर दिया जाता था। बागान मालिकों ने इस बात पर भी जोर दिया कि नील की खेती सर्वाधिक उपजाऊ ज़मीन में होनी चाहिए ताकि उत्पादन अत्यधिक हो। रैयत को अदा की जाने वाली राशि ज़मीन के क्षेत्रफल के आधार पर नीयत की गई, फसल के उत्पादन के परिमाण के आधार पर नहीं। यही वह कारण था कि किसानों को उपजाऊ ज़मीनों पर ही नील की उगाही के लिए मजबूर किया गया ताकि अधिकाधिक उपज को प्राप्त किया जा सके। किसानों ने आर्थिक और सामाजिक शोषण के अन्य रूपों का भी सामना किया जिसने उन्हें तत्कालीन प्लांटर राज के विरुद्ध आंदोलित कर दिया। चंपारण की स्थिति भारत के उन अन्य भागों से काफी कुछ अलग नहीं थी जहां किसान शोषण के अलग-अलग तरीकों का सामना कर रहे थे परन्तु यह गाँधी का हस्तक्षेप और नेतृत्व था जिसने चंपारण आंदोलन को अपवाद बना डाला।

स्थानीय कांग्रेसी नेता राजकुमार शुक्ला के निमंत्रण पर गाँधी 1917 में चंपारण आये और पहली बार उन्हें चंपारण के किसानों की दुर्दशा का अनुभव हुआ। स्थानीय प्रशासन गाँधी की गिरमिटिया मजदूरी को समाप्त करने की चिंताओं से वाकिफ था और चंपारण में गाँधी की उपस्थिति से सहज नहीं था। संभाग के कमिश्नर से मिलने के पश्चात् गाँधी ने स्थानीय लोगों द्वारा नील की खेती कर रहे किसानों की जिन शिकायतों को प्रस्तुत किया गया था, उन पर ध्यान देने का इरादा व्यक्त किया। परन्तु कमिश्नर का यह मत था कि गाँधी शायद अशांति को और बढ़ा सकते हैं तथा उन्होंने बिहार एवं उड़ीसा सरकार के मुख्य सचिव को लिखा कि उन्हें गाँधी को भारतीय सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत, जन सुरक्षा के आधार पर निर्वासित करने की अनुमति दी जाए। गाँधी को जिलाधीश ने चंपारण छोड़ने के लिए कहा क्योंकि उनके अनुसार गाँधी की उपस्थिति जन शांति के लिए समस्या खड़ी कर सकती थी। चंपारण में गाँधी की उपस्थिति पर सरकार की प्रतिक्रिया ने भारतीय प्रेस में विरोध को जन्म दिया। अमृतबाज़ार पत्रिका ने लिखा 'मिस्टर गाँधी ने अपनी बात प्राप्त कर ली है। इस सनसनीखेज मुद्दे में उन्होंने जो भूमिका निभाई है वह दक्षिण अफ्रीका में शुरू की गई उनकी सहनशील प्रतिरोध की भूमिका से कम महत्व की नहीं है। वहां पर

उन्होंने पीड़ित मानवता हेतु कारावास तथा अधिकारियों की नाराजगी को सहन किया, यहाँ पर भी उन्होंने वही किया। आम लोगों तक उनकी अपनी भाषा में पहुँचने की गाँधी की क्षमता और सादगी तथा गांवों में उनकी यात्रा ने जनसामान्य की आंखों में उन्हें मुक्तिदाता बना डाला। गाँधी ने किसानों की शिकायतों पर सरकारी जांच की मांग की तथा यह मांग भी रखी कि सरकार किसानों से अवैध मांगें बंद करे। केंद्रीय सरकार के दबावों तथा अपनी इच्छा के विरुद्ध बिहार सरकार को चंपारण के किसानों की स्थिति पर विचार करने के लिए एक आयोग का गठन करना पड़ा जिसमें गाँधी भी शामिल थे। केंद्रीय सरकार ने बिहार सरकार को लिखे एक पत्र में गाँधी की मांगों को मानने के कारणों की व्याख्या करते हुए कहा 'यदि आपके मुहावरे का प्रयोग करें तो, आयोग की नियुक्ति करके हम गाँधी से पीछा छुड़ा रहे हैं लेकिन ऐसा करते हुए हम इस आरोप से बचते हुए दिख रहे हैं कि हम अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सजग नहीं हैं। हम यह महसूस करते हैं कि यह ज्यादा युक्तिप्रद होगा कि हम उनकी यह बात मान लें बजाय इसके कि उन्हें पाँव तले दबा दें और इस आरोप में पड़ें कि हम पूरी जांच को अस्वीकार कर रहे हैं।' सरकार की कार्रवाई के पीछे जो भी तर्क रहा हो, सरकार द्वारा गठित की गई जांच समिति द्वारा की गई सिफारिशों के मद्देनजर 1917 में चंपारण कृषि अधिनियम बना। इस अधिनियम के तहत तीन कठिया व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया और पट्टेदारों की शिकायतों पर भी आंशिक रूप से ध्यान दिया गया। यद्यपि बागानमालिकों और पट्टेदारों में कोई भी पक्ष इस व्यवस्था से प्रसन्न नहीं था, परन्तु निश्चित रूप से गाँधी ने अपने हस्तक्षेप द्वारा चंपारण के किसानों के संघर्ष को भारतीय राजनीतिक आंदोलन में सत्याग्रह के प्रथम सफल प्रयोग के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। चंपारण आंदोलन में गाँधी के नेतृत्व के तरीके का विश्लेषण करते हुए ज्यूडिथ ब्राउन का अवलोकन है कि 'जाने-पहचाने राजनेताओं को एक तरफ करके वे गांवों में उसी प्रकार के कपड़े पहनकर गए जैसा गांव वाले पहनते थे, देशज भाषा में बातचीत की, उन मामलों को उठाया जिनका संबंध उन ग्रामीण श्रोताओं से था, ऐसा करते हुए उन्होंने स्थानीय व्यवसाय और शिक्षित जनों को अपनी तरफ खींचा जिनकी कांग्रेस के राजनीतिक तरीकों में रुचि और प्रभाव न के बराबर था। उन्होंने इन अलग-अलग समूहों के लिए मध्यस्थ की तरह काम किया, जनजीवन के दो स्तरों के बीच मध्यस्थता की और बदले में उन्हें एक सशक्त प्रांतीय अनुयाईयों का समूह मिला। वे वहाँ सफल हुए जहाँ पूर्ववर्ती राजनेता विफल हो चुके थे अथवा उन्होंने कभी इस समर्थन को लामबंद करने की कोशिश ही नहीं की।' चंपारण सत्याग्रह के दौरान स्थानीय बुद्धिजीवी वर्ग का एक समूह, जैसे – राजेंद्र प्रसाद, राजकुमार शुक्ल, जे.बी. कृपलानी, इंदूलाल याग्निक आदि, गाँधी के संपर्क में आए और उन्होंने आंदोलन को संगठित करने के लिए जनता में उनके दूतों का कार्य किया। चंपारण तक भारत में लोग गाँधी को दक्षिण अफ्रीका में उनके वीरत्वपूर्ण संघर्ष के लिए जानते थे और गाँधी ने कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन से एक दूरी बनाए रखी थी। चंपारण के किसानों के आंदोलन में गाँधी की भागीदारी तथा किसानों की शिकायतों के निवारण हेतु सरकार को मजबूर करने में जो भी सफलता उन्होंने प्राप्त की, उसने गाँधी के नेतृत्व के गुण के संबंध में विभिन्न समूहों और प्रभागों के बीच एक चित्र निर्मित किया। 1918 का चंपारण कृषि अधिनियम जो आंदोलन का तात्कालिक परिणाम था, ने किसानों को कुछ राहत दी और बागान मालिकों पर कुछ अंकुश लगाया।

10.5 खेड़ा सत्याग्रह

जब गाँधी चंपारण में किसानों के आंदोलन का नेतृत्व करने में व्यस्त थे उसी समय उनके गृह राज्य गुजरात में खेड़ा के किसान सरकार से कर में राहत की मांग हेतु खुद ही एकजुट हो रहे थे। किसानों का कष्ट फसल की बर्बादी और कीमतों में इजाफे की वजह

से था। जब किसान ऋण के जंजाल में फंसे थे, तब सरकार उन्हें कर्ज के बोझ से मुक्ति देने के लिए तैयार नहीं थी। 1918 में किसानों की स्थिति खेड़ा के एक किसान द्वारा इस प्रकार बयान की गई :

‘हमारे ऊपर प्लेग का संकट मंडरा रहा है। बजरी जो संवत् 1916 (यह ए.डी. 1916 होना चाहिए) में दो रुपए प्रति मन के भाव से बेची जाती थी अब सवा तीन रुपए प्रति मन के भाव से बेची जा रही है। चावल चार से छः रुपए प्रति मन पर चल रहा है और कानून के तहत हम मौहरा के फूलों को भी नहीं रख सकते। गरीब क्या खाएंगे जब इनकी यह स्थिति है, वे आपको देने के लिए पैसे कहाँ से लाएँगे। लोहे के दाम भी बढ़ गए हैं। हम हलों का साझा करते हैं, और हमारी सामग्री बहुत महंगी हो गई है। जो चीजें पहले तीन से चार रुपए मूल्य की थीं, अब उन पर बारह रुपए खर्च हो रहे हैं। मजदूर भी बहुत महंगे हो गए हैं।’

1918 में प्लेग की वजह से गुजरात को काफी नुकसान हुआ। सिर्फ खेड़ा में ही सोलह हजार सात सौ चालीस मौतें हुईं, यद्यपि कुछ लोगों का यह मत था कि होमरूल आंदोलन से सहानुभूति रखने वाले लोगों और गुजरात सभा के सदस्यों ने खेड़ा के किसानों को उकसाया। परन्तु 1918 में बाम्बे में एक जनसभा में गाँधी ने यह स्पष्ट किया कि खेड़ा आंदोलन की शुरुआत में बाहरी लोगों की कोई भूमिका नहीं थी। उन्होंने कहा :

‘यह संघर्ष बाहरी लोगों द्वारा शुरू नहीं किया गया। किसी ने भी खेड़ा के लोगों को इस हेतु नहीं उकसाया। इसके पीछे कोई राजनीतिक प्रयोजन नहीं है। यह होमरूल वालों अथवा बैरिस्टों अथवा वकीलों से पैदा नहीं हुआ जैसा कि कुछ लोगों का आरोप है... यह स्वयं किसानों द्वारा शुरू किया गया। गोधरा में राजनीतिक सम्मेलन के बाद खेड़ा के कुछ किसानों ने अत्यधिक वर्षा के परिप्रेक्ष्य में सरकार से कुछ रियायतों हेतु अनुरोध करने का निर्णय लिया। उन्होंने मुझे लिखा, मुझे इस बात की सूचना दी कि वे राहत के कानूनी हकदार हैं और मुझसे पूछा कि क्या मैं मदद कर सकता हूँ।’

आइये देखें कि खेड़ा में आंदोलन कैसे शुरू हुआ और गाँधी ने इसमें किस तरह से हस्तक्षेप किया। खेड़ा के दो स्थानीय नेताओं मोहनलाल कामेश्वर पांड्या और शंकरलाल पारीख ने स्थानीय किसानों के असंतोष को भाँपते हुए बाम्बे सरकार से यह अपील की कि किसानों पर कर देने के लिए दबाव न डाला जाए। उन्होंने बाहरी नेताओं खासकर गुजरात सभा, अहमदाबाद के सदस्यों से किसानों के पक्ष में मदद की अपील की। उन्होंने गाँधी को भी मदद के लिए टेलीग्राम भेजा, जो उस समय चंपारण में थे। गाँधी ने उन्हें अपनी मांगों पर मजबूती से डटे रहने की सलाह दी, परन्तु वे स्वयं न आ सके। गुजरात सभा जिसके गाँधी अध्यक्ष थे, ने बाम्बे सरकार से कुछ मामलों में छूट देने की तथा राजस्व की मांग को स्थगित करने की अपील की। अपने पक्ष में अनुकूल प्रतिक्रिया न मिलती देख सभा ने किसानों से भू-राजस्व अदा न करने को कहा। दूसरी तरफ सरकार ने एक जांच के पश्चात् यह पाया कि राजस्व के निलंबन का कोई उचित कारण नहीं है। स्थानीय प्रेस ने राजस्व की मांग के निलंबन हेतु किसानों के असंतोष और उनके प्रदर्शन का खूब प्रचार किया। फरवरी 1918 में गाँधी बाम्बे पहुंचे और यह निर्णय किया कि वे किसानों की कठिनाइयों की व्यक्तिगत रूप से जांच करेंगे। गुजरात सभा के अन्य सदस्यों के साथ गाँधी ने खेड़ा के गांवों का दौरा किया और यह पाया कि राजस्व के निलंबन की किसानों की मांग उचित है। किसानों की मांगों पर सरकार द्वारा कोई आश्वासन न मिलता देख गाँधी ने गुजरात सभा की बैठक में सत्याग्रह का सहारा लेने का निर्णय लिया। 22 मार्च, 1918 को नादियाड़ में एक बैठक में गाँधी ने स्वयंसेवकों से एक पावन शपथ लेने का आग्रह किया जो इस प्रकार थी :

‘हम अधोहस्ताक्षरी सत्यनिष्ठा से यह घोषणा करते हैं कि हम इस वर्ष के कर को अदा नहीं करेंगे चाहे वह एकमुश्त हो, या कई भागों में; हम यह सरकार पर छोड़ते हैं कि वह हमसे इसे प्राप्त करने के लिए जो चाहे वह कानूनी कदम उठाए और इसका जो भी परिणाम होगा हम उसे सहन करने के लिए तैयार हैं। हम अपनी ज़मीन को जब्त किए जाने की अनुमति भी देते हैं अगर वे ऐसा करना चाहें तो परन्तु हम स्वैच्छिक भुगतान के ज़रिए खुद को झूठा माने जाने की अनुमति नहीं देंगे और इस प्रकार अपना आत्म सम्मान नहीं गंवाएँगे।

गाँधी ने व्यक्तिगत रूप से खेड़ा के गांवों का दौरा किया और सत्याग्रहियों को शपथ के साथ खड़ा रहने के लिए प्रोत्साहित किया। पांडुया और अन्य स्थानीय नेता सरकार की अवमानना करने के जुर्म में गिरफ्तार किए गए परन्तु उन्होंने भारी मात्रा में स्थानीय समर्थन को जागृत किया। सरकार को यह विश्वास था कि सहनशील प्रतिरोध में अपने विश्वास को प्रकट करने की वजह से गाँधी हिंसा का सहारा नहीं लेंगे इसके साथ ही सरकार ब्रिटिशों के युद्ध संबंधी क्रियाकलापों में भारतीयों के समर्थन की आवश्यकता के लिए समान रूप से चिंतित थी। अंतः सरकार ने अपने स्थानीय अधिकारों को यह आदेश दिया कि वे करों के संग्रहण में सावधानी बरतें तथा ज़मीनों को जब्त न करें। गाँधी ने सरकार से किसी खास टोस आश्वासन के न मिलने के बावजूद सत्याग्रह की समाप्ति की घोषणा की। कुछ लोगों का दृष्टिकोण है कि गाँधी खेड़ा में हो रहे परिवर्तनों से बहुत प्रसन्न नहीं थे और कुछ क्षेत्रों में हिंसा की घटनाओं की भी सूचनाएँ थीं जो गाँधी के सहनशील प्रतिरोध का उल्लंघन थीं। ज्यूडिथ ब्राउन ने टिप्पणी की कि गाँधी के विश्लेषण के अनुसार ‘इस सत्याग्रह ने उन्हें कोई खुशी नहीं दी, और इसमें संपूर्ण सत्याग्रह के आनंद की आवश्यकताओं का अभाव था, चूंकि इसने सत्याग्रहियों को पहले से “अधिक मजबूत, अधिक चैतन्य” नहीं बनाया। गाँधी का मूल्यांकन पूरी तरह से सत्य नहीं था क्योंकि हम यह पाते हैं कि इस सत्याग्रह ने ‘उनके लिए राजनीतिज्ञों के दर्जे के बीच एक स्थान’ निर्मित किया। खेड़ा सत्याग्रह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहा परन्तु सत्याग्रह का असर सिद्ध हुआ। ज्यूडिथ ब्राउन का यह विचार है कि ‘खेड़ा ने पार के इस सबक को मजबूती से अंकित किया कि सत्याग्रह को वस्तुतः संघर्ष की किसी भी स्थिति में शिक्षित और अशिक्षित दोनों के द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। यह हर परिस्थिति के लिए एक हथियार था और गाँधी के हाथों में उनकी व्यक्तिगत विचारधारा से निर्देशित होकर इसने पारंपरिक राजनीतिज्ञों की याचिकाओं, सार्वजनिक भाषणों एवं बहसों की तकनीकों (जो कि शिक्षित वर्ग के लिए ज्यादा अनुकूल थीं) के ऊपर गाँधी को बढ़त दिला दी। डेविड हार्डीमन का तर्क है कि किसानों और सरकार दोनों में से किसी को भी स्पष्ट विजय नहीं मिली। ‘परन्तु वास्तविक विजय गाँधी को मिली जिन्होंने खेड़ा जिले के गांवों में अपने लिए एक शक्तिशाली राजनीतिक आधार निर्मित किया।’ राष्ट्रवादी आंदोलन के आगे के क्रियाकलापों में खेड़ा के गांव राष्ट्रवादी आंदोलन के शक्तिशाली समर्थन का आधार बने।

10.6 अहमदाबाद सत्याग्रह

1918 में गाँधी ने मिल मजदूरों के समर्थन में अहमदाबाद में एक और सत्याग्रह आंदोलन आयोजित किया। अहमदाबाद इसके वस्त्र (टेक्सटाइल) उद्योग के लिए जाना जाता था और अहमदाबाद के टेक्सटाइल मिल कपड़ा उत्पादन में 1913-14 में 250 मिलियन यार्ड्स से 1916-17 में 392 मिलियन यार्ड्स की अविरत वृद्धि के साक्षी रहे, यद्यपि 1918-19 में उत्पादन में गिरावट आई। उत्पादन में वृद्धि के साथ गति बनाए रखने के लिए श्रम की मांग थी। लेकिन 1917 में अहमदाबाद में प्लेग के प्रकोप ने कई मजदूरों को अपने आपको प्लेग से बचाने के लिए अहमदाबाद छोड़ने पर मजबूर कर दिया। मिल मालिकों ने मजदूरों को बनाए रखने के लिए उनके वेतन का 75 प्रतिशत अधिक बोनस दिया। लेकिन जब प्लेग

का खतरा समाप्त हो गया, मिल मालिकों ने फरवरी 1918 से प्लेग बोनस बंद करने का निश्चय किया। इसने मजदूरों के बीच असंतोष का निर्माण किया जो युद्ध के कारण कीमतों में वृद्धि की वजह से कष्ट झेल रहे थे। अहमदाबाद के मिल मजदूरों में बढ़ रहे असंतोष के बारे में गुजरात सभा के एक सचिव द्वारा गाँधी को प्रस्ताव भेजा गया। अम्बालाल साराभाई जो कपड़े की मिलों के मालिकों में से एक थे गाँधी के परिचित थे। गाँधी ने अम्बालाल से मजदूरी की दर बढ़ाने का अनुरोध किया और यह निर्णय लिया कि मजदूरों की समस्याओं का समाधान करने में मदद करेंगे। मजदूरों की एक सभा की अध्यक्षता करते हुए गाँधी ने मजदूरों की शिकायतों के निपटारे के लिए सौहार्दपूर्ण समाधान का आग्रह किया। गाँधी ने स्थानीय सरकार द्वारा निर्मित पंचायत मण्डल में मजदूरों का प्रतिनिधित्व किया। तथापि पंचायती प्रक्रिया को न मानते हुए कई मजदूर हड़ताल पर चले गए और मिल मालिकों ने मिलों में तालाबंदी कर दी। स्थिति का सावधानीपूर्वक अध्ययन करते हुए गाँधी ने मजदूरी की दरों में तर्कसंगत बढ़ोत्तरी का सुझाव दिया तथा सत्याग्रहियों के हस्ताक्षर के लिए एक शपथ का मसौदा तैयार किया। इस अवधि के दौरान लिखे गए पर्चों के ज़रिए गाँधी सत्याग्रहियों को सत्याग्रह के सिद्धान्तों के बारे में शिक्षित करना चाहते थे। जब मिल मालिकों के दबाव में आकर कुछ सत्याग्रही मिलों में कार्य पर वापस आने लगे तो गाँधी ने नैतिक दबाव बनाने हेतु उपवास का ऐलान किया। मिल मालिक किन वजहों से समझौते के लिए राजी हुए इसकी कई व्याख्याएँ हैं परन्तु एक समझौता हुआ जिसके अनुसार मजदूरी की दर में 35 प्रतिशत की वृद्धि पर सहमति हुई। उपवास को विरोधी पक्ष के ऊपर नैतिक दबाव बनाने हेतु स्व-पीड़ा के एक माध्यम के रूप में माना गया। और यह गाँधी का भारत में एक राजनीतिक हथियार के रूप में उपवास का पहला उपयोग था। गाँधी के किसानों और मजदूरों की मांगों के समर्थन में खेड़ा और अहमदाबाद में हस्तक्षेप ने उन्हें गुजरात के ग्रामीण तथा शहरी इलाकों में राजनीतिक आधार का निर्माण करने में मदद की। ज्यूडिथ ब्राउन के अनुसार, 'जिस प्रकार खेड़ा ने गाँधी को गुजरात के गांवों और खेतों की तरफ खींचा, तो अहमदाबाद ने उन्हें शहरों और कारखानों की तरफ खींचा और इस प्रकार उन्हें उनकी रुचियों के क्षेत्र और उनके अनुयायियों के चरित्र के आधार पर पुराने राजनीतिक नेताओं से और अधिक स्पष्ट रूप से अलगाया।'

10.7 महत्व

चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के मुद्दे अलग-अलग थे। सामाजिक तथा राजनीतिक संदर्भ भी अलग थे, परन्तु इन तीनों जगहों पर गाँधी ने सत्याग्रह का प्रयोग राजनीतिक लामबंदी के तरीके के रूप में किया। उस समय भारत का राजनीतिक परिवेश निश्चित रूप से होमरूल आंदोलन और लखनऊ समझौते की वजह से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक प्रभावी राजनीतिक लामबंदी के अनुकूल था। परन्तु फिर भी विभिन्न रुचियों वाले लोगों की सम्मिलित राजनीतिक लामबंदी नहीं दिख रही थी। चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलन स्थानीय मुद्दों के इर्द-गिर्द संयोजित हुए थे, परन्तु गाँधी के हस्तक्षेप ने सामान्य जनसमूह को भी व्यापक राजनीतिक आंदोलन में लाने की ज़मीन तैयार की। गाँधी के करिश्मे ने निःसंदेह स्थानीय लोगों द्वारा अपने दमन के विरुद्ध किये गये आंदोलन के लिए उनके नेतृत्व को स्वीकार करने में मदद की, परन्तु गाँधी अपने साथ प्रतिरोध की एक नई भाषा भी ले आए। विरोध के एक तरीके के रूप में हिंसा का अस्वीकार तथा सहनशील प्रतिरोध पर ध्यान देना, शारीरिक शक्ति से अधिक नैतिक शक्ति को अपने राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग करके गाँधी राजनीतिक लामबंदी को एक नई दिशा देने में सफल हुए। चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलनों में गाँधी के नेतृत्व के संबंध में कई व्याख्याएँ हैं। ज्यूडिथ ब्राउन का अवलोकन निम्नलिखित है :

‘उन्होंने राजनीतिक नेताओं के मापदंड के अनुसार दो बेहद पिछड़े क्षेत्रों में कार्य किया और निश्चित रूप से बड़ी संख्या में अनुयायियों को आकर्षित किया क्योंकि उन्होंने वो मुद्दे उठाये जो उनकी रुचि की सीमा से बाहर थे, तथा अपने समर्थकों को कार्य की वह तकनीक मुहैया कराई, जो उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप थी लेकिन जिसे नेता उपयोग करने से डरते थे। यद्यपि बहुत कुछ गाँधी के करिश्माई अपील द्वारा निर्मित था, फिर भी यह स्पष्ट हो गया था कि गुजरात और बिहार में उनकी सार्वजनिक छवि इतनी सामान्य और एकल नहीं थी। उन्होंने विभिन्न समूहों से विभिन्न कारणों के लिए विभिन्न तरीकों से अपील की और उनके नेतृत्व का स्वरूप प्रशंसकों को प्रभावित करने से कहीं ज़्यादा जटिल था। कुछ निश्चित क्षेत्रों में जहां वह व्यक्तिगत रूप से जाने जाते थे, समाज में निचले समूहों पर उनकी अपील अस्थायी रूप से करिश्माई थी, क्योंकि वह वस्तुतः एक स्थानीय मसीहा बन गए थे; लेकिन उनके वास्तविक कार्य के लिए वह प्रभावी स्थानीय लोगों के एक छोटे समूह पर भरोसा करते थे जिनको उन्होंने समर्थन जुटाने और अपने अभियानों का आयोजन करने हेतु उनके “उपकारिंदे” बनने के लिए शिक्षित किया था। ऐसे लोगों ने विभिन्न कारणों से उनका अनुगमन किया – व्यक्तिगत आकर्षण, धार्मिक आस्था, आर्थिक लाभ की संभावना या बढ़ती स्थानीय प्रतिष्ठा या किसी भी एक के अभाव के लिए।’

जॉक पॉचपडास ने अपनी पुस्तक ‘चंपारण और गाँधी’ में यह तर्क दिया है कि विभिन्न गांवों में नील की खेती के विरुद्ध लोगों को लामबंद करने में किसान ज्यादा सक्रिय थे, बजाय अभिजात्य नेतृत्व के, जैसा कि चंपारण के गाँधीवादी आंदोलन के अधिकाधिक आख्यानों में दर्शाया गया है। गाँधी की सरलता, दृढ़संकल्प तथा सविनय अवज्ञा के साथ-साथ उस समय उड़ रही इस प्रकार की अफवाहों ने कि गाँधी सरकारी अधिकारियों से बातचीत करने में सक्षम हैं, ने भी जनसमूह को इस आशा से गाँधी की तरफ खींचा कि वे उनकी शिकायतों का निवारण करेंगे। स्थानीय नेताओं ने गाँधी के नाम का प्रयोग गाँधी के संज्ञान के बिना किसानों को लामबंद करने के लिए किया। गाँधी ने किसानों से अपील की कि वे हिंसा का सहारा न लें और यह स्पष्ट किया कि उनकी समस्याओं का समाधान सरकार की तरफ से आएगा, उनकी तरफ से नहीं। परन्तु गाँधी का संयमित प्रभाव वहां पर किसानों को हिंसा से नहीं रोक सका जहाँ गाँधी उपस्थित नहीं थे। जॉक पॉचपडास के मत से कई ऐसे हिंसक प्रदर्शन हुए जोकि गाँधी द्वारा चंपारण में किए गए प्रचार से प्रत्यक्ष जुड़े थे परन्तु व्यवहार में इन कार्यों पर गाँधी का कोई नियंत्रण नहीं था।

ज्यूडिथ ब्राउन के इस अवलोकन से कि उपकारिंदों ने किसानों को लामबंद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, से असहमत होते हुए सुमित सरकार ने तर्क दिया है कि ‘गुजरात के किसानों की अपनी खुद की सोच थी’ और वे सिर्फ गाँधी के लोगों का अनुसरण ही नहीं कर रहे थे। अहमदाबाद के कपड़ा मजदूरों के आंदोलन को संदर्भित करते हुए सरकार का मत है कि अहमदाबाद में मजदूरों और मिल मालिकों के मनमुटाव की शांतिपूर्ण मध्यस्थता का गाँधी का तरीका इसलिए सफल हुआ क्योंकि अहमदाबाद के मिल मालिकों और मजदूरों से उनका व्यक्तिगत संपर्क था। परन्तु यह गाँधीवादी मॉडल जिसने न सिर्फ “वर्ग संघर्ष” की तरह के राजनीतिकरण को अपितु इसके साथ-साथ उग्र आर्थिक संघर्ष को भी अस्वीकार किया, अहमदाबाद के परे कभी नहीं फैला।

चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलनों को नजदीक से देखने पर यह पता चलता है कि प्रत्येक जगह स्थानीय लोगों ने ही पहले शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई और लामबंदी की शुरुआत की। गाँधी ने स्थानीय नेताओं के आमंत्रण पर बाद में हस्तक्षेप किया। तब तक एक नेता के रूप में गाँधी की छवि बहुत जानी-पहचानी नहीं थी परन्तु दक्षिण अफ्रीका में किए गए उनके सफल आंदोलन ने एक नेता के रूप में उनकी ऐसी छवि ज़रूर बना दी

थी जो शत्रुओं का सामना कर सकता था और न्याय के लिए लड़ सकता था। उनके हस्तक्षेप ने न सिर्फ जनसमूह द्वारा शुरू हो चुके आंदोलनों को दिशा प्रदान की अपितु गाँधीवादी अहिंसा ने आंदोलन को एक प्रभावी और वैध रूप प्रदान किया जो अब तक अज्ञात था। इन तीन आंदोलनों के दौरान गाँधी, बिहार में राजेंद्र प्रसाद तथा जे.बी. कृपलानी एवं गुजरात में बल्लभ भाई पटेल तथा इंदुलाल याग्निक आदि स्थानीय शिक्षित युवाओं को प्रभावित करने में सफल रहे जिन्होंने बाद में राष्ट्रवादी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा कीं। गाँधी ने अभी तक भविष्य में राष्ट्रवादी राजनीति से जुड़ाव के संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया था, परन्तु इन आंदोलनों ने निश्चित रूप से एक राष्ट्रीय नेता के रूप में गाँधी की बड़ी भूमिका हेतु जमीन तैयार की।

10.8 सारांश

यह इकाई आपको भारतीय राजनीति में गाँधी के आविर्भाव से परिचित कराती है। हमने यह चर्चा विरोध आयोजित करने तथा नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन का नेतृत्व करने में गाँधी की भूमिका का जिक्र करके शुरू की थी। दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन के दौरान अहिंसा और सत्याग्रह का राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग राजनीतिक विरोधों में अनसुना था। हम व्याख्यायित कर चुके हैं कि किस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के उनके ज्ञान तथा पाश्चात्य विचारकों के अध्ययन ने उनके राजनीतिक दर्शन को आकार दिया। उनमें संदर्भों एवं आवश्यकताओं के आधार पर विभिन्न विचारों को संयोजित करने की योग्यता थी। हमने यह भी व्याख्यायित किया कि बिहार और गुजरात में किसानों और मजदूरों द्वारा आरंभ किए गए आंदोलनों को बाद में गाँधी का समर्थन प्राप्त हुआ और सत्याग्रह की पद्धति के ज़रिए उन्होंने किसानों और मजदूरों के कष्टों का निवारण करने का प्रयास किया। जो भी सफलता उन्होंने स्थानीय जनता के लिए चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलनों के ज़रिए प्राप्त की, इन आंदोलनों ने गाँधी के नेतृत्व में अपार आशाएँ जगाईं और जल्द ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्वकर्ता के रूप में गाँधी का आविर्भाव हुआ।

10.9 अभ्यास

- 1) गाँधी के राजनीतिक दर्शन को आकार देने में दक्षिण अफ्रीका के अनुभव का क्या महत्व था?
- 2) चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में भिन्नता पर चर्चा करें।
- 3) असहयोग आंदोलन के पूर्व गाँधीवादी आंदोलनों के महत्व पर विभिन्न मतों की चर्चा करें।

इकाई 11 महत्त्वपूर्ण मोड़*

संरचना

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 रौलट सत्याग्रह की पृष्ठभूमि
- 11.3 सत्याग्रह का आयोजन
- 11.4 सत्याग्रह का क्षेत्रीय प्रसार
- 11.5 सत्याग्रह का महत्व
- 11.6 सारांश
- 11.7 अभ्यास

11.1 प्रस्तावना

पूर्ववर्ती इकाई में हमने बिहार के चंपारण तथा गुजरात के खेड़ा एवं अहमदाबाद के किसान और मजदूर आंदोलनों में निभाई गई भूमिका के संदर्भ में भारतीय राजनीति में गाँधी के उदय पर चर्चा की। भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास तथा गाँधी के नेतृत्व की भूमिका के संदर्भ में अगली महत्त्वपूर्ण घटना 1919 का रौलट सत्याग्रह थी। 1919 के रौलट ऐक्ट के लागू होने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने विरुद्ध उठने वाली आवाजों को दबाने के लिए राज्य को मनमाने अधिकार दिए जाने के विरुद्ध भारतीय जनता द्वारा कड़ी प्रतिक्रिया हुई। दक्षिण अफ्रीका में सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सत्याग्रह की तकनीक के उपयोग के अनुभव ने गाँधी को रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह का आह्वान करने हेतु साहस दिया। हम इस इकाई में इस बात की व्याख्या करेंगे कि रौलट सत्याग्रह के शुरुआत की पृष्ठभूमि क्या थी और किस प्रकार अलग-अलग प्रांतों में विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों ने गाँधी के आह्वान पर प्रतिक्रिया की, और किस प्रकार भारत के कुछ भागों में इस आंदोलन के दौरान हिंसा भड़क उठी। गाँधी ने हिंसा की वजह से आंदोलन वापस ले लिया और यह आंदोलन रौलट ऐक्ट को भंग कराने में विफल रहा, तब भी व्यापक जनसमूह की लामबंदी के ज़रिए रौलट सत्याग्रह ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक नये चरण की शुरुआत की और गाँधी ने राष्ट्रीय राजनीति में केंद्रीय भूमिका निभाई।

11.2 रौलट सत्याग्रह की पृष्ठभूमि

पूर्ववर्ती इकाई में हमने सत्याग्रह की गाँधीवादी संकल्पना को व्याख्यायित किया। और इस बात पर भी ध्यान दिया कि किस प्रकार गाँधी ने सत्याग्रह और अहिंसक प्रदर्शनों का उपयोग स्थानीय समस्याओं के निवारण के लिए किया। बिहार और अहमदाबाद में किसानों और मजदूरों के आंदोलन में गाँधी के नेतृत्व ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी बड़ी भूमिका के लिए रास्ता तैयार किया। ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित किए गए दमनकारी रौलट ऐक्ट के विरुद्ध मार्च 1919 में गाँधी ने अपना प्रथम अखिल भारतीय सत्याग्रह प्रारंभ किया। हम इस इकाई में उन क्रियाकलापों पर चर्चा करेंगे, जिन्होंने आपत्तिजनक रौलट ऐक्ट के पारित होने में भूमिका निभाई तथा इसके साथ ही गाँधी के नेतृत्व में तत्संबंधित अखिल भारतीय सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत की भी चर्चा करेंगे। भारत में व्यवहारतः ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रत्येक वर्ग को शिकायतें थीं और वे यह अपेक्षा कर रहे थे कि प्रथम

* इकाई लेखक – प्रो. स्वराज बसु

विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश सरकार कुछ ऐसे बड़े प्रशासनिक सुधार करेगी जिससे भारतीय जनमानस की इच्छाओं की पूर्ति हो सके। तथापि 1919 के मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के द्वारा जो शुरुआत की गई वह अपनी प्रकृति में अत्यंत सीमित थी, अतः राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व इस सुधार का आलोचक था। यह वही समय था जब भारत में विशेष रूप से बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंसक तरीकों से संघर्ष करने की क्रांतिकारी गतिविधियों का उभार हुआ। ब्रिटिश सरकार कुछ सीमित सुधारों के साथ-साथ भारतीयों द्वारा की जा रही किसी भी ऐसी गतिविधि को दमित करना चाहती थी जो कि उनके मतानुसार भारत में ब्रिटिश सरकार के हितों के विरुद्ध जाती थी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने 'क्रांतिकारी' गतिविधियों को दबाने के लिए असामान्य शक्तियों का सहारा लिया। जब विश्वयुद्ध समाप्त हुआ तो उन्होंने सिडनी रौलट की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसका उद्देश्य था भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों पर लगाम लगाने के लिए विधायी उपायों की सहायता लेना। रौलट कमेटी की सिफारिशों पर भारत सरकार ने राज्य विरोधी गतिविधियों पर नियंत्रण करने तथा राजनीतिक अपराधों से निपटने के लिए सरकार को विवेकाधीन शक्तियों से युक्त करने के लिए दो ड्राफ्ट विधेयक तैयार किए। इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल (Imperial legislative council) में भारतीय सदस्यों के एकजुट विरोध के बावजूद सरकार ने इस कानून को आगे बढ़ाया। यह भी विश्वास किया जाता है कि रौलट ऐक्ट के ज़रिए भारत की सरकार ब्रिटेन में रह रहे उन लोगों को निश्चित करना चाहती थी जो यह महसूस कर रहे थे कि मांटैग्यू का सुधारों का प्रस्ताव भारत में ब्रिटिश हितों को प्रभावित करेगा। रौलट ऐक्ट ने सरकार को इस हेतु अधिकृत कर दिया कि वह राज्य की सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु भारतीय दंड संहिता में परिवर्तन कर सके 'और क्रांतिकारी अपराधों से निपटने के लिए कानून की प्रक्रिया को छोटा कर सके। गाँधी इस तरह के दमनकारी अधिनियम के विरुद्ध थे और उन्होंने इसे ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जनता को दी गई एक खुली चुनौती माना। वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री (जो एक उदारवादी नेता थे) को गाँधी ने एक पत्र में लिखा 'अगर हम दबाव में झुक गये तो हम समाप्त हो जाएंगे यदि हम अपने इन शब्दों को सही साबित कर दें कि सरकार को इस प्रकार के प्रदर्शन का सामना करना पड़ेगा जैसा उसने कभी नहीं देखा, हमें निरंकुशता और अत्याचारी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की अपनी क्षमता को सिद्ध करना होगा... मेरे लिए यदि इन दो विधेयकों को आगे बढ़ाया जाता है, तो मैं कानून की उस शक्ति के प्रति जो इस प्रकार के शैतानी विधेयक (जैसे ये दो हैं) का सामर्थ्य रखती है, के विरुद्ध अब शांतिपूर्ण आज्ञाकारिता प्रस्तुत नहीं कर पाऊँगा, और मैं उन लोगों को अपने साथ इस संघर्ष में शामिल होने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं करूँगा।' (9 फरवरी, 1919, कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी वोल्यूम XV)। गाँधी का विश्वास था कि रौलट विधान लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों के विरुद्ध था और जो सांवैधानिक सुधार सुझाए गए थे, वे मज़ाक थे। उन्होंने तत्कालीन भारत में व्याप्त सामाजिक असंतोष और राजनीतिक स्थिति को बखूबी समझा। गाँधी ने नये कानून की अवहेलना करने के अपने निर्णय से सरकार को अवगत करा दिया और अपने अनुयायियों के साथ मिलकर रौलट ऐक्ट की अवज्ञा करने के लिए एक शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किए। उसके बाद गाँधी ने 'भारत की जनता' के नाम एक खुला पत्र लिखा तथा उससे रौलट ऐक्ट के विरुद्ध शुरु किए गए सत्याग्रह में शामिल होने की अपील की। इसके पहले होमरूल आंदोलन तथा लखनऊ समझौते के ज़रिए किए गए कार्यों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक एकीकृत विपक्ष को निर्मित करने की इच्छा सामने आ चुकी थी। परन्तु यह गाँधी थे, जो सत्याग्रह और अहिंसा पद्धति के ज़रिए व्यापक विरोध की नई तकनीक सामने लाए। गाँधी ने प्रार्थना और याचिका की राजनीति के अनुयायियों से अपील की कि 'वर्धमान पीढ़ी याचिकाओं से संतुष्ट नहीं होगी... सत्याग्रह ही एक मात्र रास्ता है।'

11.3 सत्याग्रह का आयोजन

रविन्दर कुमार का अवलोकन है कि 'रौलट सत्याग्रह आकलन का कार्य नहीं अपितु आस्था का कार्य था, यद्यपि गाँधी का अपने कार्यों की सच्चाई में दृढ़ विश्वास था, उन्हें कोई अनुमान न था कि भारत के लोग इस पहल पर कैसी प्रतिक्रिया करेंगे ('प्रस्तावना', एसेज ऑन गांधियन पॉलिटिक्स)। 1919 तक गाँधी प्रमुख भारतीय नेताओं से संपर्क विकसित कर चुके थे, देश के अलग-अलग भागों में भारत की जनता के अलग-अलग वर्गों को संबोधित कर चुके थे और चंपारण, खेड़ा तथा अहमदाबाद में किसानों तथा मजदूरों का नेतृत्व कर चुके थे। परन्तु अब भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अथवा अन्य किसी राजनीतिक संगठन पर उनका नियंत्रण नहीं था जिसकी मदद से वे अखिल भारतीय आंदोलन का आयोजन कर सकें। रविन्दर कुमार के मतानुसार, सीमितताओं के बावजूद गाँधी द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रथम देशव्यापी सत्याग्रह की शुरुआत, 'ने भारत में राष्ट्रवाद को वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले आंदोलन से रूपांतरित करके आम जनसमूह का प्रतिनिधित्व करने वाला आंदोलन बना डाला।' यह आंदोलन गाँधी को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में ले आया। एनी बेसेंट और बालगंगाधर तिलक द्वारा संगठित दोनों होमरूल लीगों तथा भारतीय मुसलमानों के संघों ने गाँधी को आवश्यक जनसमर्थन का आधार मुहैया कराया। उन्होंने अपने खुद के संगठन सत्याग्रह सभा का संयोजन भी इस आंदोलन को चलाने के लिए किया। प्रथम विश्व युद्ध के अंत ने युवा भारतीयों के मध्य तीव्र इच्छा की यह भावना भी निर्मित की कि ब्रिटेन को युद्ध के समय किए गए वादे निश्चित रूप से पूरे करने चाहिए, परन्तु वे प्रस्तावित मॉटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों से प्रसन्न नहीं थे। जहाँ भारतीय मुसलमान खिलाफत की नियति को लेकर चिंतित थे और ब्रिटेन के प्रति नाखुश थे, वहीं दक्षिण अफ्रीका के अपने अनुभवों से सीख लेते हुए गाँधी ने अत्यंत ही चतुराई से इस ब्रिटिश विरोधी भावना को भुनाने की कोशिश की। होमरूल लीग के सदस्यों ने रौलट विधेयकों के विरुद्ध भारत के विभिन्न शहरों में विरोध सभाएँ कीं। मुंबई जो कि होमरूल आंदोलन में भी अत्यंत सक्रिय था, बाम्बे होमरूल आंदोलन के सदस्य सबसे पहले गाँधी तक पहुंचे, तब वे फरवरी 1919 में रौलट विधेयकों के संबंध में मुंबई में थे। बाम्बे होमरूल लीग के सदस्यों ने पर्चों और पोस्टरों के ज़रिए लोगों को रौलट विधेयकों की जानकारी दी तथा इन विधेयकों के विरोध में गाँधी की शपथ को प्रचारित किया। महत्त्वपूर्ण समाचार पत्रों, जैसे – यंग इंडिया, दि बाम्बे बाई वीकली, नवजीवन, दि गुजराती वीकली ऑफ अहमदाबाद, दि बाम्बे क्रॉनिकल, इलाहाबाद का दि इंडिपेंडेंट, लखनऊ का मुस्लिम अखुवत, अमृतसर का वक्त आदि ने इन विधेयकों के विरुद्ध जनमत की लामबंदी में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाम्बे में सत्याग्रह सभा की स्थापना के ज़रिए गाँधी ने सत्याग्रह को आगे बढ़ाने के लिए एक स्पष्ट सांगठनिक कदम उठाया। इसके पश्चात् दिल्ली, इलाहाबाद, गुजरात और अन्य स्थानों पर भी सत्याग्रह समितियाँ बनीं। इन सभाओं की जिम्मेदारी थी भागीदारों को लामबंद करना, लोगों को सत्याग्रह और अहिंसा के बारे में शिक्षित करना तथा रौलट विधेयक की व्याख्या करना। सत्याग्रह के प्रचार का अधिकाधिक विभिन्न शहरों में गाँधी के व्यक्तिगत दौरों तथा स्थानीय नेताओं द्वारा की गई पहल पर निर्भर था। राजेन्द्र प्रसाद, जे.बी. कृपलानी, बल्लभभाई पटेल, राजा गोपालाचारी, जवाहरलाल नेहरू, हकीम अज़मल खान, डॉ. एम.ए. अंसारी, डॉ. सैफुद्दीन किचलू, डॉ. सत्यपाल, स्वामी श्रद्धानन्द, हसन इमाम आदि ने खुद को सत्याग्रह आंदोलन के आयोजन में सहायता हेतु सौंप दिया। इस सत्याग्रह आंदोलन के दौरान गाँधी ने कांग्रेस का औपचारिक समर्थन नहीं लिया जो अब भी व्यापक प्रदर्शनकारी राजनीति के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने सत्याग्रह सभाओं की स्थापना, व्यापक जनसमर्थन जुटाने तथा अहिंसा के बारे में जागरूकता का निर्माण करने हेतु भारत के विभिन्न भागों का दौरा किया। अगले संभाग में जाने से पहले

यहां मैं आपको गाँधी द्वारा मद्रास में प्रस्तावित सत्याग्रह के समर्थन में लोकप्रिय जनसमर्थन जुटाने हेतु दिए गए भाषण से परिचित कराना चाहूँगा। यह भाषण रौलट विधेयकों तथा प्रस्तावित सत्याग्रह पर उनके विचारों को स्पष्ट करता है।

सत्याग्रह आंदोलन पर भाषण

त्रिचनापल्ली

25 मार्च, 1919

दोस्तो,

.... शायद आप रौलट विधेयकों को उतना ही जानते हैं जितना मैं। मुझे उन्हें व्याख्यायित करने की आवश्यकता नहीं है। आप सभी चाहते हैं कि उन्हें वापस ले लिया जाए। इंपीरियल काउंसिल में भारतीय सभासदों ने अपनी पूरी कोशिश की कि इस कानून को वापस ले लिया जाए। वे असफल रहे। ये अधिनियम बुरे हैं, परन्तु भारतीय सदस्यों की सर्वसम्मत आवाज़ का अनादर करना और भी बुरा है। अब आपके और मेरे ऊपर जिसके प्रतिनिधि ये सभासद हैं, यह उत्तरदायित्व है कि इस दोहरी गलती को ठीक करें। यह कैसे ठीक होगा? जब इस देश पर राज करने वाले उन्हीं लोगों के साथ अन्याय कर रहे हैं जिन पर ये राज करते हैं, इतिहास हमें यह सिखाता है कि इन्होंने हिंसा का सहारा लिया है, कभी-कभी इन्हें सफलता भी मिली है, प्रायः यह हारे हैं; परन्तु हिंसा का परिणाम हिंसा ही हो सकती है, जैसे अंधेरा अंधेरे को बढ़ाता है और इसे गहराता जाता है। हिंसा का सिद्धांत इसी पृथ्वी का है, सांसारिक है, केवल भौतिक है, और उस मानव मात्र का पथप्रदर्शक कभी नहीं हो सकता जो कि अंततः आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखता है। यदि, जैसा कि मेरा विश्वास है, आप हिंसा के सिद्धान्त को अस्वीकार करेंगे, तो आपको निवारण के लिए अन्य तरीकों पर विचार करना होगा और उसका जैसा मैं अनुवाद करूँगा, अर्थ होगा शथं प्रति सत्यम्..... इन विधेयकों ने राष्ट्रीय विवेक का उल्लंघन किया है और किसी के विवेक का उल्लंघन करने वाले आदेशों का प्रतिरोध एक पवित्र विशेषाधिकार और सौंदर्य है। हम इस कानून अथवा गवर्नर के आदेश का विरोध नहीं कर रहे, परन्तु यह हमारा कर्तव्य है। उसके उस प्रत्येक आदेश का विरोध करना, जो नैतिक आदेश नहीं है, हमारे लिए खुला है और जब हम इस गवर्नर के कुकृत्यों की आदरपूर्वक अवज्ञा करते हैं, तो हम न सिर्फ उनकी अपितु संपूर्ण राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ, मुझसे यह पूछा जाता है कि किस अन्य कानून की हम अवज्ञा करेंगे। आज मैं आपको इसका सिर्फ यह उत्तर दे सकता हूँ कि आपके सामने हर उस कानून की अवज्ञा करने का विकल्प खुला है, जिसमें नैतिक अनुमोदन शामिल नहीं है। इस नाते आपके लिए यह जानना पूर्णतः अनावश्यक है कि हमें किन कानूनों की अवज्ञा करनी है। सत्याग्रही का लक्ष्य है, अपने समर्पित सिर पर वह सारे भार उठा लेना जिनके लिए वह समर्थ है। इसलिए आपमें जो भी रौलट कानून को अस्वीकार करते हैं और जिनकी सत्याग्रह की प्रभावोत्पादकता में निष्ठा है, उन सबको मैं यह आमंत्रण देने आया हूँ कि आप इस शपथ पर हस्ताक्षर करें। परन्तु मैं आपसे यह भी कहूँगा कि आप इस शपथ पर हस्ताक्षर करने से पहले हजार बार विचार करें। यदि आप इस कानून को अस्वीकार नहीं करते और यदि आपके पास क्षमता और इच्छा नहीं है एवं अगर आप इस कारण इस शपथ पर हस्ताक्षर नहीं करते तो इसमें कोई अपयश नहीं है। तथा किसी भी सत्याग्रही का यह हक नहीं है कि यदि आप इस शपथ पर हस्ताक्षर न करें तो वह बुरा मानें...

आप आज यहां प्राप्त प्रपत्रों से यह देख पाएंगे कि मैंने प्रेस को कुछ सुझावों से युक्त एक पत्र लिखा है तथापि मैं उनको इस सायंकाल भी दोहराता हूं। मेरा पहला सुझाव है कि सप्ताह के रविवार जैसे कि 6 अप्रैल को हम 24 घंटे का उपवास रखें। यह कानूनों की नागरिक अवज्ञा शुरू करने से पहले सत्याग्रहियों के लिए उचित प्राथमिकता होगी। अन्य सभी के लिए सरकार द्वारा किए गए गलत कार्यों पर उनके गहरे दुख की अभिव्यक्ति होगी। मैंने इस आंदोलन को विशुद्ध रूप से एक धार्मिक आंदोलन माना है और उपवास हमारे यहां प्राचीन समय से ही प्रचलित रहा है। आप इसे भूख हड़ताल समझने की भूल न करें (हास्य)। न ही आप इसे सरकार पर दबाव डालने के लिए निर्मित किया हुआ मानें। यह स्वनियंत्रण का एक मापदंड है। यह आत्मा की पीड़ा की अभिव्यक्ति होगी और जब आत्मा पीड़ित है, तो कोई भी सहन नहीं कर सकता। मुझे उम्मीद है कि सभी वयस्क लोग यह कार्य करेंगे, यदि उनका खराब स्वास्थ्य या धार्मिक आस्था उन्हें ऐसा करने से न रोके। मैं यह भी सुझाव दूंगा कि इस रविवार समस्त कार्य भी निलंबित किए जाएँ, सभी बाजार और व्यापारिक स्थान भी बंद रखे जाएँ। इन दो कार्यों के आध्यात्मिक मूल्य के अलावा वे जनसमूह के लिए प्रथम श्रेणी के मूल्य की शिक्षा भी निर्मित करेंगे। मैंने अपने सुझावों में सरकारी कर्मचारियों को भी शामिल करने का खतरा उठाया है, क्योंकि मेरी यह सोच है कि हमें विवेक के साथ उन्हें, उनकी स्वतंत्रता, उनकी योग्यता और गलत के साथ स्वयं को संधिबद्ध करने के विशेषाधिकार को श्रेय देना होगा, जिस पर राष्ट्र क्रोध कर सकता है। यह सही है कि वे राजनीतिक सभाओं और बहसों में भाग न लें, परन्तु उनका व्यक्तिगत विवेक निश्चित रूप से पूर्ण तथा मुक्त होना चाहिए। मेरा तीसरा सुझाव जिसमें लोकसेवक शायद भाग न ले पाएँ, वह यह है कि यदि संभव हो सके तो हम उस दिन प्रत्येक गांव, कस्बों का दौरा करें, वहां सभाएँ करें और भारत के राज्य सचिव को यह प्रस्ताव पारित करें कि वह इस कानून को वीटो कर दें। मैं आप सभी से इन जनसभाओं और प्रस्तावों का सहारा लेने को नहीं कहता लेकिन एक कारण से ऐसा कर रहा हूँ और वह कारण यह है कि इन सभाओं और प्रस्तावों के पीछे राष्ट्रीय इच्छा को लागू करने हेतु सत्याग्रह की शक्ति है। इन तीन सुझावों में, आप सत्याग्रही हैं या नहीं हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, जब तक आप रौलट कानून को अस्वीकार करते हैं, आप सब इसमें शामिल हो सकते हैं। मेरा विश्वास है कि संपूर्ण भारतवर्ष से ऐसी प्रतिक्रिया प्राप्त होगी जो इस सरकार को यह विश्वास दिला देगी कि हम जिंदा हैं और हमारे बीच क्या चल रहा है....

दि हिन्दू, 27.3.1919

(स्रोत: कलेक्टड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, वॉल्यूम-XV)

गाँधी इस आंदोलन की सफलता और परिणामों को लेकर बहुत निश्चित नहीं थे, तब भी वे आगे बढ़े और 6 अप्रैल, 1919 को राष्ट्रव्यापी हड़ताल से इस आंदोलन की शुरुआत करने का निर्णय लिया। 9 अप्रैल, 1919 को गाँधी गिरफ्तार कर लिए गए और भारत के विभिन्न भागों में व्यापक प्रदर्शन हुए जिन्होंने तुरन्त हिंसक मोड़ ले लिया। यद्यपि आंदोलन शहरों और बड़े कस्बों में ज्यादा प्रभावी रहा परन्तु गाँधी के अनुयायी छोटे कस्बे और ग्रामीण इलाकों तक भी पहुंचे। बहुत छोटे औपचारिक संगठन के साथ और अपेक्षा से काफी अधिक रौलट सत्याग्रह जनसमूह में जोश पैदा करने में सफल रहा। अब हम इस सत्याग्रह आंदोलन के क्षेत्रीय प्रचार की चर्चा करेंगे।

11.4 सत्याग्रह का क्षेत्रीय प्रसार

रौलट सत्याग्रह ने जाति, वर्ग और समुदाय की कड़ी से निरपेक्ष होकर जनसामान्य से जुड़ाव स्थापित करने में गाँधी की नेतृत्व क्षमता को सिद्ध कर दिया। गाँधी द्वारा सिर्फ लोकप्रिय धार्मिक प्रतीकों का चतुर प्रयोग ही नहीं था अपितु, सामाजिक यथार्थ और विभिन्न वर्गों के प्रति निष्ठा की उनकी समझ ने उन्हें एक समान राजनीतिक कार्य के लिए संगठित करने में मदद की। रविन्दर कुमार ने कहा है कि 'भारत के लोगों को वर्गों, समुदायों और धार्मिक समूहों के एक शिथिल नक्षत्रमण्डल के रूप में देखते हुए और क्योंकि उनको देश में राजनीतिक समाज की प्रकृति के बारे में कोई भ्रम नहीं था, वे इसे इस तरह से संगठित करने में सफल हुए जैसा संगठित वह पहले कभी नहीं हुआ।' रौलट सत्याग्रह आंदोलन को '1857 के पश्चात् सबसे बड़े और सर्वाधिक हिंसक ब्रिटिश विरोधी लहर के रूप में चित्रित किया गया। दिल्ली, लाहौर, अमृतसर, गुजरात आदि इस आंदोलन के दौरान सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र रहे। 1912 में राजधानी के दिल्ली स्थानांतरण के साथ राजनीतिक जागरूकता भी बढ़ी। क्रांतिकारी राष्ट्रवाद, अखिल इस्लामवाद और होमरूल के प्रदर्शनों ने दिल्ली के लोगों को राजनीतिक रूप से व्यस्त रखा। होमरूल लीग और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा ब्रिटिश सरकार के विभिन्न कार्यकलापों के विरुद्ध जनजागृति पैदा करने हेतु की गई पहलें, साथ ही साथ स्थानीय प्रेस द्वारा लोगों की आम समस्याओं पर प्रकाश डालने से एक ब्रिटिश विरोधी भावना निर्मित हुई जिसमें रौलट विधेयकों से संबंधित विभिन्न अफवाहों ने और ईंधन डाला। 7 मार्च को गाँधी दिल्ली में एक विशाल जनसभा में शामिल हुए जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों से लोग उपस्थित थे। गाँधी ने दिल्ली में सत्याग्रह सभा की स्थापना की जो भारी मात्रा में छात्रों को अपनी तरफ आकर्षित करने में सफल हुई। दिल्ली में हुए रौलट सत्याग्रह आंदोलन का विश्लेषण करते हुए डोनाल्ड डब्ल्यू फेरेल (दिल्ली में रौलट सत्याग्रह से संबंधित फेरेल के आलेख के लिए देखें, रविन्दर कुमार (सं.), एसेज ऑन गाँधीयन पॉलिटिक्स) ने लिखा है कि दिल्ली में यह आंदोलन 30 मार्च से 18 अप्रैल तक चला और जिन लोगों ने इस आंदोलन में भाग लिया, वे दो वर्गों में विभाजित थे— प्राथमिक नेता और द्वितीयक नेता। प्राथमिक नेता वे थे जिनकी पहचान राजनेता के रूप में थी तथा द्वितीयक नेता वे थे जो बहुत प्रसिद्ध नहीं थे परन्तु शहर के वंचित वर्गों की चिंताओं को वाणी देना चाहते थे। स्वामी श्रद्धानंद जो आर्यसमाज से संबंधित थे, को भी गाँधी ने आंदोलन में शामिल होने के लिए तैयार कर लिया। श्रद्धानंद ने दिल्ली में लोकप्रिय जनसमर्थन आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। व्यापारी समुदाय तथा साथ ही साथ आम जनसमुदाय ने 30 मार्च को दिल्ली में रौलट कानून के विरोध में हड़ताल रखी। आंदोलन के नेताओं द्वारा सीमित कोशिशों के बावजूद भी विभिन्न इलाकों से स्वतःस्फूर्त प्रतिक्रिया प्राप्त हुई। 30 मार्च को दिल्ली में जनसभा के दौरान दंगे हुए और पुलिस फायरिंग भी हुई जिसे स्थानीय प्रेस ने काफी प्रचारित किया। हिंसा की वजह से गाँधी ने दिल्ली में स्वयंसेवकों को यह सलाह दी कि वे 6 अप्रैल की हड़ताल में भाग न लें। गाँधी की अपील के बावजूद 6 अप्रैल को दिल्ली में पूर्ण हड़ताल रही। श्रद्धानंद और अन्य नेताओं ने 15,000 से 20,000 की भीड़ को संबोधित किया और सत्याग्रह के महत्व के बारे में बोले। गाँधी 9 अप्रैल को दिल्ली आने वाले थे परन्तु वे रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिए गए। इसकी प्रतिक्रिया में दिल्ली में मोहम्मद अब्दुल रहमान की अध्यक्षता में एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें लगभग एक लाख लोग शामिल हुए। इस जनसभा में श्रद्धानंद ने गाँधी को रिहा किए जाने का प्रस्ताव पेश किया और लोगों से गाँधी द्वारा सुझाए गए अहिंसा के उदाहरण का अनुसरण करने की अपील की। गाँधी की रिहाई और नेताओं द्वारा किए गए अनुरोधों के बावजूद दिल्ली में 18 अप्रैल तक हड़ताल रही। रेलवे तथा बैंक के कर्मचारियों ने 13 अप्रैल को हड़ताल की घोषणा की। दिल्ली के पड़ोसी इलाकों में

जनसमूह के बीच अत्यंत ही आक्रामकता दिखाई दी, जिसकी मनःस्थिति हिंसक थी। 17 अप्रैल को चांदनीचौक में फायरिंग हुई। दिल्ली में रौलट सत्याग्रह से यह सिद्ध हो गया कि यदि हितों की संगति हो तो विषम जातीय समूहों को भी एक मंच पर लाया जा सकता है।

रौलट सत्याग्रह की पूर्वसंध्या पर लाहौर में ब्रिटिश सरकार से मोहभंग के पर्याप्त कारण थे। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् तुर्की के प्रति ब्रिटेन के रुख की वजह से 'इस्लाम खतरे में है' की सोच थी। बंगाल को हर्जाना दिए जाने का निर्णय, मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने की वजह से पैदा हुआ संकट ये सारे लाहौर के लोगों के मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए काफी थे। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने सत्याग्रह की घोषणा का समर्थन किया और कई प्रबुद्ध नागरिक भी आंदोलन के समर्थन में आगे आए। विभिन्न सामाजिक समूहों से आई हुई भीड़ भारी मात्रा में इकट्ठी हुई और विद्रोह की मनःस्थिति में थी। नेताओं ने भीड़ को हड़ताल का महत्व समझाते हुए संबोधित किया और रौलेट एक्ट के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किया गया। लाहौर की सड़कों पर जब सरकारी अधिकारियों ने हड़ताल को रोकने की कोशिश की तो उन्हें भारी विरोध का सामना करना पड़ा। सरकार की तरफ से नागरिकों को शांति और व्यवस्था कायम रखने की चेतावनी दी गई परंतु शहर अवज्ञा की मनःस्थिति में था। 9 अप्रैल को रामनवमी के त्यौहार का उपयोग करते हुए लाहौर के नेताओं ने हिन्दू और मुसलमानों को एक साथ आने की अपील की और हिन्दुओं और मुसलमानों से युक्त बीस हजार लोगों का जत्था शहर के विभिन्न भागों में घूमा। इस जुलूस में सरकार के खिलाफ विरोध की मनःस्थिति बिल्कुल स्पष्ट थी। पंजाब के रास्ते में गाँधी को गिरफ्तार किए जाने की अफवाहों ने तथा अमृतसर के स्थानीय नेताओं जैसे— किचलू और सत्यपाल के निर्वासन ने सशक्त लोकप्रिय असंतोष को पैदा किया जिसके फलस्वरूप शहर में सरकार के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन हुआ। सरकार ने पुलिस फायरिंग का सहारा लिया जिसने समस्या को और बढ़ा दिया। सरकारी कार्रवाई के विरुद्ध लाहौर में विभिन्न धार्मिक समुदायों और सामाजिक वर्गों से युक्त पैंतीस हजार लोगों की भीड़ जुटी। एक स्थानीय नेता के सुझाव पर लाहौर के नागरिकों की ओर से कार्य करने के लिए एक लोकप्रिय समिति का गठन हुआ। कोई और रास्ता न मिलता देख स्थानीय सरकार ने शहर में कानून और व्यवस्था स्थापित करने हेतु पीपल्स कमेटी से बातचीत करने का प्रयास किया परन्तु सरकारी कार्रवाई के विरुद्ध जनमत इतना मजबूत था कि पीपल्स कमेटी हड़ताल की समाप्ति हेतु समर्थन प्राप्त करने में विफल रही। लोकप्रिय जनअसंतोष को देखते हुए सरकार ने शहर में मार्शल लॉ लागू कर दिया और आंदोलन को वापस लेने के लिए मजबूर कर दिया। लाहौर में हुए रौलट सत्याग्रह का विश्लेषण करते हुए रविन्दर कुमार का मत है कि 'ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लोकप्रिय आंदोलन प्रारंभ करने हेतु अप्रैल 1919 में जो भी अपेक्षित था, वह था एक मुद्दा, जो असंतोष, जिसने लाहौर में विभिन्न वर्गों और समुदायों को प्रभावित किया, को अभिव्यक्ति की एक श्रृंखला प्रदान करता। रौलट अधिनियम के विरुद्ध सत्याग्रह का सूत्रपात करके गाँधी ने एक ऐसा ही मुद्दा प्रदान किया, और उन्होंने इस प्रकार आंदोलन को स्थापित किया जिसकी तीव्रता ने स्थानीय प्रशासन को आश्चर्यचकित कर दिया और उतना ही लाहौर के स्थानीय नेता को भी आश्चर्य में डाला।'

सबसे बुरा अमृतसर में घटित हुआ। ब्रिटिश सरकार की कारगुजारियों तथा गदर पार्टी के ट्रायल की वजह से पंजाब में और खासकर सिखों के अंदर असंतोष व्याप्त था। 6 अप्रैल, 1919 को अमृतसर में रौलट कानून के विरुद्ध हड़ताल हुई तथापि किचलू और सत्यपाल जैसे स्थानीय नेताओं के निर्वासन तथा पंजाब में गाँधी का प्रवेश निषिद्ध कर देने के सरकारी निर्णय ने भारी जनअसंतोष पैदा किया। अमृतसर में स्थानीय नेताओं ने इन दो नेताओं के निर्वासन के सरकारी निर्णय के खिलाफ विरोध मार्च निकाला। रेलवे के पैदल पुल के नज़दीक प्रदर्शनकारियों को रोका गया और उन पर फायरिंग की गई। 10 अप्रैल

को हुई पुलिस फायरिंग के विरोध में आम जनता ने सरकारी संस्थानों पर आक्रमण किया। स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए जनरल डायर ने मार्शल लॉ लगा दिया। दो दिनों तक शहर शांत रहा। 13 अप्रैल को, जिस दिन बैसाखी का त्यौहार था, अमृतसर के आस-पास के गांवों से किसान स्वर्णमंदिर में दर्शन हेतु आए। उस दिन स्वर्ण मंदिर के नजदीक स्थित एक स्थान जालियां वाला बाग में दोपहर में एक जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में मुख्यतः स्थानीय निवासी और गांव के किसान शामिल थे, जिनको इस बात की जानकारी नहीं थी कि शहर में जनसभा पर पाबंदी है। भीड़ को बिना कोई चेतावनी दिए उस बंद मैदान में जनरल डायर ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गए और 1200 घायल हुए। अगले दिन पंजाब के अन्य शहरों में मार्शल लॉ लगा दिया गया। ब्रिटिश दमन की इस नृशंषता के विरोध में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई 'नाइटहुड' की उपाधि लौटा दी। लाहौर और अमृतसर के अलावा गुजरात का गुजरावाला जनपद तथा पंजाब का लायलपुर भी रौलट एक्ट विरोधी प्रदर्शनों से गंभीर रूप से प्रभावित रहे। सरकार के विरुद्ध जनआक्रोश व्यक्त करने के लिए सरकारी भवनों और संस्थानों पर हमले हुए। सरकार ने आंदोलन के दमन के लिए शक्ति का सहारा लिया।

अमृतसर में हुई नृशंषता को यादगार बनाने के लिए कांग्रेस ने अपना अगला वार्षिक सत्र अमृतसर में करने का निर्णय लिया ताकि पंजाब के लोगों के साथ एकजुटता प्रदर्शित की जा सके। अमृतसर तथा अन्य स्थानों पर मारे गए लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कांग्रेस ने सर्वाधिक शर्मनाक बर्बरता की आलोचना की। जनरल डायर को तुरंत हटाए जाने तथा वायसरॉय लार्ड चेम्सफोर्ड को तुरंत वापस बुलाए जाने का सरकार से अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पारित किया। यह भी निर्णय लिया गया कि जालियां वाला बाग के स्थान का अधिकग्रहण कर लिया जाए और मारे गए लोगों की यादों को चिरस्थायी बनाने के लिए वहां पर एक स्मारक बनाया जाए।

अहमदाबाद में रौलट कानून के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन हेतु एक जनसभा का आयोजन किया गया। होमरूल लीग और सत्याग्रह सभा के तत्वाधान में 6 अप्रैल को रौलट एक्ट के खिलाफ विरोध दिवस मनाने की तैयारियाँ की गईं। बाद में, गाँधी की गिरफ्तारी की खबर के उपरांत लोग सड़कों पर उतर आए और मजदूरों ने मिलों में काम करना बंद कर दिया। भीड़ को नियंत्रित करने के लिए पुलिस ने फायरिंग का सहारा लिया और हिंसा पूरे शहर में फैल गई। सरदार बल्लभ भाई पटेल, इंदुलाल याग्निक तथा अन्योंने शांति की अपीलें की। नियंत्रण की अपील के बावजूद उपद्रव जारी रहे, सरकारी भवनों को निशाना बनाया गया, घरों को लूटा गया, भीड़ को नियंत्रित करने के लिए शहर लगभग मार्शल लॉ की स्थिति में आ गया। एक आकलन के अनुसार फायरिंग में 28 लोग मारे गए और 123 लोग जख्मी हुए। 13 अप्रैल को अहमदाबाद वापसी के पश्चात् गाँधी ने सरकार से अनुमति लेकर जनसभा का आयोजन किया और लोगों से उपवास करने और अपने अपराधों को कबूल करने का आह्वान किया। अहमदाबाद के अलावा वीरमगम, खेड़ा और अन्य जगहों पर भी उपद्रव फैले। संयुक्त प्रांत के लगभग सभी बड़े शहरों में प्रदर्शन हुए। दुकानें बंद रहीं और जन-यातायात रुक सा गया। सर्वाधिक उल्लेखनीय थी जनजमाव में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की एकता। बिहार में भी हड़ताल लगभग बड़े शहरों तक ही सीमित रहे। बाम्बे, कलकत्ता, मद्रास में भी हड़तालें हुईं परन्तु वहां हिंसा पर नियंत्रण रहा। कलकत्ता में हुए रौलट सत्याग्रह पर पेश की गई सरकारी रिपोर्ट में यह कहा गया कि कलकत्ता के कई इलाकों में दुकानें पूरी तरह से बंद रहीं। कारें और ट्राम रुक गए; गाँधी को रिहा करने के लिए प्रदर्शन हेतु लोगों को उकसाने के लिए पर्चे बांटे गए। नाखुदा मस्जिद पर हिन्दुओं और मुसलमानों का एक बड़ा जनसमूह इकट्ठा हुआ और वहां से वे लगभग 6000 लोगों

की जनसभा में शामिल हो गए। 'इस संबंध में कई जांचें की गईं परन्तु अब तक संकेत यही थे कि उपद्रव बंगाल के बाहर से आयोजित किए गए तथा सरकार के विरुद्ध लोगों को खड़ा करने की कोशिशें बाकी जगहों की अपेक्षा यहां निश्चित रूप से कम सफल रहीं।' यद्यपि आंदोलन मुख्यतः शहरों तक ही सीमित रहा परंतु भारत के कुछ इलाकों के छोटे कस्बों और गांवों में भी लोकप्रिय आंदोलन हुए। तथापि सत्याग्रह आंदोलन के दौरान हुई हिंसा ने गाँधी को सत्याग्रह को बंद करने पर मजबूर कर दिया। गाँधी ने लिखा:

'यह मेरी गहरी अवमानना और खेद का विषय है, मैं देख सकता हूँ कि लोगों के मध्य सत्याग्रह के फैलने के परिमाण के बारे में मैंने ज्यादा गणना कर ली। मैंने घृणा और द्वेष की शक्ति को कम करके आँका। सत्याग्रह में मेरा विश्वास अब भी है लेकिन मैं भी केवल एक तुच्छ प्राणी हूँ। जैसे अन्य गलतियों के लिए उत्तरदायी हूँ, वैसे ही मैं भी उत्तरदायी हूँ। मैं गलती को ठीक कर रहा हूँ। कुछ समय के लिए मैं अपने कदमों को वापस खींच रहा हूँ। तब तक जब तक मुझे यह विश्वास नहीं हो जाएगा कि मेरे साथी भीड़ को नियंत्रित और नियमित कर सकते हैं, और उन्हें शांतिपूर्ण रख सकते हैं। मैं दिल्ली अथवा पंजाब के अन्य भागों में प्रवेश करने से बचूंगा। इसलिए मेरा सत्याग्रह वर्तमान में मेरे अपने देशवासियों की तरफ ही निर्देशित होगा।' (14 अप्रैल 1919, सी डब्ल्यू एम जी, वाल्यूम-XV)

उन्होंने सत्याग्रहियों को यह सुझाव दिया कि वे अस्थायी रूप से सविनय अवज्ञा को निलंबित कर दें और सत्याग्रह के मूलभूत सिद्धांतों से मजबूती से जुड़ने की अपील की जो हिंसा के किसी भी रूप का निषेध करती है। सत्याग्रह ने विभिन्न वर्गों के अंदर जिस गति का निर्माण किया था, वह तुरंत ही समाप्त हो गया परंतु इसने जिस ब्रिटिश विरोधी भावना का निर्माण किया, उसका पूरी तरह से क्षय नहीं हुआ। आंदोलन यद्यपि सरकार को रौलट ऐक्ट को निरस्त करने हेतु मजबूर करने में सफल नहीं हो पाया परंतु कई तरह से रौलट सत्याग्रह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। आगे के प्रभाग में हम आपको इस आंदोलन की प्रकृति और महत्व से परिचित कराएंगे।

11.5 सत्याग्रह का महत्व

सीमित सांगठनिक समर्थन और मुख्यतः शहरों और कस्बों तक ही विस्तार होने के बावजूद रौलट सत्याग्रह अंग्रेजों के विरुद्ध एक तूफान पैदा करने में सफल हुआ जिसने जनांदोलन का रूप ले लिया यद्यपि भारत के सभी भागों से इस आंदोलन को समान प्रतिक्रिया नहीं मिली परंतु विभिन्न वर्गों और समुदायों ने गाँधी के आह्वान पर प्रतिक्रिया दी। गाँधी के पहले के नेताओं ने भारतीय समाज के बहुलतावादी चरित्र की उपेक्षा की थी और आम जनसमूह को अंग्रेजों के विरुद्ध लामबंद करने पर खास ध्यान नहीं दिया। गाँधी को जाति, वर्ग और समुदायों की सीमाओं से परे हटकर लोगों को औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए एकजुट करने के महत्व का एहसास हो चुका था। व्यापक जनसमूह को लामबंद करने में गाँधी को मिली सफलता के कारणों का विश्लेषण करते हुए रविन्दर कुमार का तर्क है कि यह सिर्फ 'लोकप्रिय धार्मिक प्रतीकों का कौशलपूर्ण प्रयोग' ही नहीं था जिसे कि कुछ विद्वान गाँधी की सफलता से जोड़ते हैं। कुमार के अनुसार 'गाँधी का करिश्मा एक हद तक राजनीति में धार्मिक मुहावरों के प्रयोग के ऊपर निर्भर था। एक हद तक यह व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्वों में निहित बोधगम्य अंतर्दृष्टि का परिणाम था तथा एक तरीके से इन उत्तरदायित्वों को राजनीतिक क्रियाकलापों के लिए लागू किया जा सकता था... गाँधी ने भारत की जनता को वर्गों, समुदायों और धार्मिक समूहों के अव्यवस्थित नक्षत्र मंडल के रूप में देखा और चूंकि देश में राजनीतिक समाज की प्रकृति

के बारे में उन्हें कोई भ्रम नहीं था, इसलिए वह इसे इस तरीके से एकजुट करने में सक्षम हुए, जैसे यह पहले कभी नहीं हुआ।' जिस कुशलतापूर्वक गाँधी ने ब्रिटिशों द्वारा टर्की के प्रति किए गए सलूक के मुद्दे पर मुसलमानों की आहत भावनाओं का उपयोग किया, इससे मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने में उन्हें मदद मिली। एक भाषण में गाँधी कहते हैं, 'शायद यह प्रश्न किया जा सकता है, मैं, एक हिन्दू, क्यों मुसलमानों के प्रश्नों के लिए परेशान हूँ। उत्तर है कि क्योंकि आप मेरे पड़ोसी और मेरे देशवासी हैं, यह मेरा कर्तव्य है कि मैं आपके दुख में सहभागी बनूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में बात करूँ और जब परीक्षा सामने आई तो इस विचार को फलीभूत करने में फेल हो जाऊँ।' (9 मई 1919, सी डब्ल्यू एम जी, वॉल्यूम-XV)। भारतीय सामाजिक यथार्थ के अपने अध्ययन द्वारा गाँधी ने यह महसूस किया सिर्फ भावपूर्ण मुद्दा ही भारत में जन राजनीतिक आंदोलन के अनुकूल है और दमनकारी रौलट कानून के विरुद्ध उनके आवाज़ उठाने के पीछे यही कारण था। उसी समय यह ध्यान देने योग्य है कि एक आंदोलन जो कि अहिंसक था, में इस प्रकार की विविधतापूर्ण जनता को नियंत्रित कर पाना कितना कठिन था। उत्तेजना और सरकारी दमन का परिणाम हिंसा हो सकती थी और रौलट सत्याग्रह के मामले में यही हुआ।

ज्यूडिथ एम. ब्राउन ने रौलट सत्याग्रह को गाँधी के 'राजनीति में परिधि से प्रतिबद्ध भागीदारी की तरफ संक्रमण' के रूप में देखा। गाँधी का उदय अपार क्षमता से परिपूर्ण अखिल भारतीय नेता के रूप में हुआ और राजनीति के प्रति उनका नवीन दृष्टिकोण जनता का समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ। ज्यूडिथ ब्राउन का सुझाव है कि रौलट सत्याग्रह की सफलता 'स्थानीय परिस्थितियों और स्थानीय राजनीतिक नेताओं के सहयोग पर निर्भर थी... वह हर जगह जहाँ हड़तालें काफी सफल हुईं और गाँधी के प्रोपगैंडा ने इसका स्वागत किया, ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अशांति की भट्टी महीनों से सुलग रही थी और गाँधी के प्रचार ने सिर्फ उसमें एक चिंगारी लगाने का काम किया जिसने आग को भड़का दिया।' जनजीवन में असंतोष और तनाव के बावजूद केंद्रीय प्रांतों मद्रास, मराठी भाषी बाम्बे तथा बंगाल में सत्याग्रह को अधिक जनसमर्थन नहीं मिला क्योंकि स्थानीय नेता असंतोष को आंदोलन से जोड़ने में विफल रहे। रौलट सत्याग्रह, रौलट एक्ट को निरस्त कराने में विफल रहा, हिंसक घटनाएं हुईं, यद्यपि इस आंदोलन का सार अहिंसा था। बहरहाल, ज्यूडिथ ब्राउन के अनुसार 'अखिल भारतीय नेतृत्व में गाँधी के पहले निबंध के रूप में यह उल्लेखनीय रूप से उन लोगों के लिए शिक्षाप्रद रहा जो इसे ठीक ढंग से पढ़ पाए। चूंकि इसने राजनीति में महात्मा की शक्तियों और कमजोरियों दोनों को दर्शाया।'

1920 से 1942 के दौर में गाँधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के स्वर को देखने पर यह मान लेना मुश्किल नहीं लगता कि रौलट सत्याग्रह ने राजनीतिक संघर्ष का विचार और तरीका मुहैया कराया। अहिंसा के विचार में दृढ़ विश्वास होने के कारण गाँधी आलोचनाओं के बावजूद भी आंदोलन को तब वापस लेने में नहीं हिचकिचाए जब यह हिंसक हो उठा। इस आंदोलन ने गाँधी को राष्ट्रीय राजनीति में केंद्रीय भूमिका तथा कांग्रेस में प्रभावशाली स्थिति प्राप्त करने में भी मदद की।

11.6 सारांश

ब्रिटिश राज के विरुद्ध रौलट सत्याग्रह को एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में देखा गया। विश्व युद्ध में भारत के सहयोग के बदले ब्रिटिश सरकार ने कुछ निश्चित सुधारों का वादा किया था परन्तु उसी समय ब्रिटिश सरकार ब्रिटिशों के विरुद्ध भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष को शांत करने के बारे में पूरी तरह आश्वस्त नहीं थी। इसने उन्हें ब्रिटिश विरोधी आंदोलन पर

अंकुश लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार को सशक्त करने हेतु दमनकारी रौलट कानून को पारित करने के लिए प्रेरित किया। चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के किसानों और मजदूरों के कष्टों के निवारण के लिए सत्याग्रह के ज़रिए गाँधी की सफलतापूर्ण मध्यस्थता से उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर रौलट कानून में जनमत को लामबंद करने हेतु एक मौका मिला। उन्होंने होमरूल लीगों, भारत में अखिल भारतीय इस्लामिक संगठनों और सत्याग्रह सभा, जो उन्होंने रौलट अधिनियम के विरुद्ध सत्याग्रह आयोजित करने हेतु निर्मित की थी, से सांगठनिक सहयोग लिया। भारत के विभिन्न भागों की जनता को जो विभिन्न कारणों से व्यथित थी, इस सत्याग्रह के ज़रिए ब्रिटिशों के विरुद्ध अपने असंतोष को ज़ाहिर करने का एक मौका मिला। हिंसा का सहारा न लेने की गाँधी की अपील के बावजूद कुछ स्थानों पर पुलिस फायरिंग और भड़काने की वजह से हिंसा हुई और कई मासूम लोगों की जानें गईं। इसने गाँधी को आंदोलन भंग करने पर विवश कर दिया। यह आंदोलन रौलट अधिनियम को भंग करने हेतु ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने में नाकामयाब हुआ। लेकिन जाति, वर्ग और समुदाय की अस्मिता से परे जिस प्रकार की जन लामबंदी का गवाह यह आंदोलन बना वह अभूतपूर्व था। यह आंदोलन ब्रिटिशों के विरुद्ध आम जनता की लामबंदी हेतु बहुतों के लिए एक सबक था और इसने कांग्रेस तथा राष्ट्रीय राजनीति में गाँधी के प्रभावशाली स्थिति के लिए रास्ता तैयार किया।

11.7 अभ्यास

- 1) इस इकाई में घटनाएँ जिस तरह व्याख्यायित की गई हैं, उन्हें किस अर्थ में भारतीय राष्ट्रवादी राजनीति में महत्त्वपूर्ण मोड़ को आकार देना कहा जा सकता है?
- 2) जालियाँ वाला बाग से संबंधित घटनाओं पर टिप्पणी लिखें।
- 3) रौलट अधिनियम क्या था? यह राष्ट्रवादियों के बीच अलोकप्रिय क्यों था?

संरचना

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 खिलाफत आंदोलन की शुरुआत
- 12.3 असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि
- 12.4 गाँधी के नेतृत्व के तहत दो आंदोलनों का जुड़ाव
- 12.5 प्रमुख चरण
- 12.6 साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों में आंदोलनों का योगदान
- 12.7 सारांश
- 12.8 अभ्यास

12.1 प्रस्तावना

यह सामान्य रूप से मान्यताप्राप्त तथ्य है कि खिलाफत और असहयोग आंदोलन भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण मील के पत्थर हैं। इन्होंने व्यापक जनसमूह की लामबंदी के एक नए युग की शुरुआत की और भारतीय राजनीति के भविष्य को मौलिक आकार दिया। एक तरह से असहयोग आंदोलन रौलट विरोधी आंदोलन और खिलाफत से उपजा था। वास्तव में, खिलाफत कांग्रेस ने ही पहले असहयोग के कार्यक्रम को अपनाया। तथापि, यह एक संपूर्ण आंदोलन तभी बन पाया जब कांग्रेस ने इसे अपनाने का निर्णय लिया। इसके अतिरिक्त जब महात्मा गाँधी ने इसे वापस लिया और कांग्रेस ने इस वापसी की पुष्टि की तो असहयोग आंदोलन समाप्त हो गया, जबकि खिलाफत आंदोलन इसके आगे भी जारी रहा। इस प्रकार खिलाफत आंदोलन असहयोग आंदोलन से पहले शुरू हुआ और उसके बाद तक जारी रहा। यद्यपि इनका प्रक्षेप पथ किंचित अलग-अलग था, परंतु दोनों ही साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन थे तथा 1920-22 की अवधि के दौरान महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक साथ आए। वास्तव में महात्मा गाँधी की अनुपस्थिति में इन दो साम्राज्यवाद विरोधी धाराओं का सफल जुड़ाव पैदा होना संभव नहीं था। इस इकाई में हम इन आंदोलनों की उत्पत्ति के कारणों इनके विकास के रास्तों, गाँधी के नेतृत्व की भूमिका तथा भारतीय जनता और औपनिवेशिक राज्य के ऊपर पड़े इनके प्रभावों की चर्चा करेंगे।

12.2 खिलाफत आंदोलन की शुरुआत

भारत में खिलाफत आंदोलन भारतीय मुसलमानों की उस भावना से जुड़कर पैदा हुआ जिसके तहत वे तुर्की में खलीफा की सत्ता को बचाना चाहते थे। इस्लामिक परंपरा में खलीफा को प्रॉफेट मुहम्मद का उत्तराधिकारी माना जाता था। वह इस्लाम के अनुयाईयों का कमांडर तथा पवित्र स्थानों का संरक्षक और रक्षक माना जाता था। 19वीं शताब्दी में ऑटोमन साम्राज्य एकमात्र इस्लामिक साम्राज्य था और इस प्रकार तुर्की के सुल्तान को भारतीय मुसलमानों द्वारा अत्यंत आदर के साथ खलीफा के रूप में माना जाता था। जब प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की की हार हुई और यह निश्चित हो गया कि विजेता मित्र राष्ट्र उस पर कठोर प्रतिबंध लगाएंगे तो भारत में मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की

* इकाई लेखक – प्रो. एस.बी. उपाध्याय

ताकि ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव बनाया जा सके कि वह ऑटोमन साम्राज्य और खलीफ़ा की सत्ता के प्रति नरम रुख अपनाए और उनकी क्षेत्रीय अखंडता को बनाए रखे। खिलाफ़त आंदोलन की वैचारिक उत्पत्ति की व्याख्या दो प्रकार से की गई है। एक तरफ अध्येताओं ने इसमें संपूर्ण विश्व की अखिल इस्लामी भावनाओं। आंदोलनों और उनके गैर-भारतीय तथा बाह्य चरित्र को स्थित किया है। दूसरी तरफ कुछ इतिहासकारों ने इसकी आगत प्रकृति तथा अखिल इस्लामिक प्रतीकों के प्रयोग द्वारा एक अखिल भारतीय मुस्लिम पहचान को निर्मित करने के इसके प्रयासों तथा भारतीय राष्ट्रवाद से इसके जुड़ाव पर जोर दिया है। वास्तव में ये दोनों धाराएँ परस्पर विरोधी नहीं थीं।

खिलाफ़त को भारतीय मुस्लिम नेतृत्व द्वारा एक ऐसे प्रयास के रूप में देखा जा सकता है जिसके तहत उन्होंने अपनी अखिल इस्लामिक तथा भारतीय राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों को साथ लाने की कोशिश की। यही वह संश्लेषण था जिसने 1919 और इसके पश्चात् व्यापक जनलामबंदी को सक्षम बनाया।

भारतीय मुसलमानों की एकता की इस तलाश ने खलीफ़ा की सत्ता और तुर्की के सुल्तान में एक धार्मिक केंद्र को पाया। 19वीं शताब्दी से भारतीय सुन्नी मुसलमानों में तुर्की के सुल्तान की एक खलीफ़ा के रूप में व्यापक स्वीकृति थी जो उनके अनुसार मुसलमानों के पवित्र स्थानों की रक्षा कर सकता था। इस प्रकार भारतीय मुसलमानों के बीच तब-तब अखिल इस्लामिक भावनाओं की लहर उठी जब-जब तुर्की युद्ध में शामिल रहा। उदाहरण के लिए 1877-78 के दौरान रूसो-टर्की युद्ध तथा 1897 में ग्रीको-टर्की युद्ध। 1911-13 के दौरान बालकन युद्धों की श्रृंखला ने मुस्लिम नेताओं के मन में यह भय पैदा कर दिया कि क्रिश्चियन शक्तियाँ ऑटोमन साम्राज्य और खलीफ़ा को कुचलने की कोशिश कर रही हैं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान और पश्चात् ये भावनाएँ फिर सामने आईं। तुर्की जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ धुरी शक्तियों का एक भाग था जो ब्रिटिश और उसके सहयोगियों के विरुद्ध लड़ा। युद्ध में अपनी विजय के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने खलीफ़ा को तुर्की की सत्ता से हटा दिया। उस समय यह चर्चा भी थी कि तुर्की पर कठोर शांति संधि आरोपित की जाएगी जो उसे उसके अधिकार क्षेत्रों और प्रभाव से विरहित कर देगी। इन परिस्थितियों में भारतीय मुसलमानों के मध्य एक विस्तृत आंदोलन विकसित हुआ जिसने माँग रखी कि खलीफ़ा का अधिकार मुस्लिम पवित्र स्थलों पर रहने दिया जाए और उसे उतना पर्याप्त क्षेत्र मुहैया कराया जाए जिससे कि वह पवित्र स्थलों की सुरक्षा हेतु सक्षम रह सके। यह आंदोलन खिलाफ़त आंदोलन के नाम से जाना गया और यह तेजी से अभिजात्य वर्ग के साथ-साथ शहरी लोकप्रिय वर्गों तथा उलेमा अथवा मुस्लिम धार्मिक अध्येताओं के बीच फैला। ब्रिटिश सरकार को शत्रु घोषित कर दिया गया, खिलाफ़त का कोष पैसे और गहनों से भर गया। खिलाफ़त की जनसभाओं में हजारों लोग शामिल हुए और सीमावर्ती क्षेत्रों से हजारों लोग शत्रु की जमीन (दार-अल-हर्ब) से इस्लाम की जमीन (दार-अल-इस्लाम) में चले गए।

इस आंदोलन ने अपने नेतृत्व को दो धाराओं से प्राप्त किया, ये दोनों औपनिवेशिक शासन के दौरान जागृति हेतु मुसलमानों के लिए शैक्षिक सुधारों में शामिल थीं। एक था अलीगढ़ आधारित पश्चिमी रंग-ढंग का बुद्धिजीवी वर्ग जिसने अंग्रेजी शिक्षा की वकालत की तथा सरकारी सेवाओं में रोज़गार के लिए दबाव बनाया। दूसरा था उलेमाओं का वर्ग जिन्होंने मदरसों पर आधारित पारंपरिक इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था को मज़बूत करने की कोशिश की तथा अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य आचार-व्यवहार का विरोध किया। दो प्रकार के नेतृत्व की उपस्थिति ने आंदोलन में विविधता निर्मित की जहाँ पाश्चात्य शिक्षित नेतृत्व ने संयम पर जोर दिया, वहीं उलेमाओं ने आंदोलन को कट्टरपंथी स्वरूप दिया। तथापि, ये दोनों धाराएँ

उस समय ब्रिटिश विरोधी और अखिल इस्लामिक कार्यों पर अपने रुख में समान थी। आंदोलन को ठीक प्रकार से आयोजित करने के लिए नेतृत्व ने दो अखिल भारतीय निकायों का गठन किया – ऑल इंडिया खिलाफत कमेटी और जमीयत अल-उलेमा-ए-हिंद। पूर्ववर्ती मुस्लिम राजनीतिक संगठन जैसे-मुस्लिम लीग पूरी तरह से 1920 के दशक के मध्य तक इन दो संस्थाओं द्वारा आच्छादित कर लिए गए। 1919 में खिलाफत की मांग के लिए मुस्लिम जनसमुदाय को लामबंद करने की प्रक्रिया सफलतापूर्वक शुरू हुई। तथापि यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक गैर-मुस्लिम भारतीयों को एक विस्तृत साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष हेतु लामबंद न किया जाए। उस समय एक राष्ट्रवादी संगठन के रूप में कांग्रेस तथा सर्वाधिक स्वीकृत नेता के रूप में महात्मा गाँधी सबसे उचित विकल्प थे। गाँधी खिलाफत आंदोलन के नेतृत्व के लिए तैयार थे परन्तु कांग्रेस अब भी एक अखिल भारतीय आंदोलन के लिए तैयार नहीं थी। तथापि अन्य कई परिस्थितियों ने कई साम्राज्यवाद विरोधी संगठनों का एक साथ एक मंच पर आना संभव बनाया।

12.3 असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि

खिलाफत आंदोलन अपने अखिल इस्लामिक चरित्र के अलावा अपने मनोवेग में गहरे स्तर पर साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रवादी था। इसके अलावा कई अन्य कारण थे जिन्होंने सामान्यतः भारतीय जनता के अंदर तीव्र साम्राज्यवाद विरोधी भावनाओं को पैदा किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान और उसके बाद देश की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष निर्मित किया। युद्ध के दौरान और उसके पश्चात् वस्तुओं की बढ़ती कीमतों ने जनता की मुश्किलों को बढ़ाया। इसके अतिरिक्त देश के कई भागों में किराए और करों की बढ़ती हुई मांग से किसान भी असंतुष्ट थे। यह देश के विभिन्न भागों जैसे- चंपारण खेड़ा, अहमदाबाद, बाम्बे, मद्रास आदि में हुए किसानों और मजदूरों के प्रदर्शनों से परिलक्षित हुआ।

युद्ध के दिनों के राजनीतिक आशावाद को भी तब गहरा धक्का लगा जब ब्रिटिश सरकार राष्ट्रवादी मांगों पर विचार करने के अपने उन वादों से पीछे हट गई जो उसने युद्ध में भारतीयों की मदद के बदले किए थे। मॉटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार जिसके परिणामस्वरूप 1919 का भारत सरकार अधिनियम आया, ने राष्ट्रवादियों का मोहभंग कर दिया जो स्वशासन की दिशा में अधिक आशा लगाए हुए थे। 1918 में बाम्बे में एक विशेष सत्र में कांग्रेस ने इन प्रस्तावों को 'निराशाजनक और असंतोषजनक' कहते हुए निंदा की और प्रभावी स्वशासन की मांग की। घाव को और कुरेदते हुए औपनिवेशिक सरकार ने मार्च 1919 में रौलट अधिनियम पारित किया, जिसने सरकार को किसी भी व्यक्ति को बिना किसी ट्रायल के गिरफ्तार करने और जेल में डालने की शक्ति दे दी। यह अधिनियम केंद्रीय विधायी परिषद् में भारतीय सदस्यों के एकजुट विरोध के बावजूद पारित किया गया। इसने भारतीय जनता को क्रुद्ध कर दिया और व्यापक अशांति भड़क उठी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देशव्यापी सत्याग्रह का आयोजन किया गया। भारी मात्रा में जनसभाएँ, विरोध प्रदर्शन और हड़तालें हुईं जिनके परिणामस्वरूप कुछ हिंसा की वारदातें भी हुईं।

पंजाब के जालियाँ वाला बाग में शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों का औपनिवेशिक सरकार द्वारा कत्लेआम अंतिम तिनका साबित हुआ। 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जालियाँ वाला बाग में एक विशाल किन्तु शांतिपूर्ण जनसमुदाय रौलट विरोधी प्रदर्शनों में भाग ले रहे अपने नेताओं की गिरफ्तारी का विरोध करने एकत्र हुआ था। जनरल डायर ने अपने सैनिकों को निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलाने का आदेश दिया। इस गोलीबारी में सैकड़ों मारे गए और

हजारों घायल हुए। इस निर्दयता ने संपूर्ण राष्ट्र को हिला दिया और ब्रिटिश सरकार द्वारा धारण किए हुए सभ्यता के मुखौटे को फाड़कर उतार दिया। महान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विरोध स्वरूप अपनी नाइट हुड की उपाधि लौटा दी और घोषणा की कि 'मैं, अपनी तरफ से सभी असाधारण विशिष्टताओं से रहित होकर, अपने देशवासियों के पक्ष में खड़ा हूँ।' इसी तरह की भावनाएँ चारों तरफ फैली थीं और यह एक अखिल भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के उभार का समय था।

12.4 गाँधी के नेतृत्व के तहत दो आंदोलनों का जुड़ाव

राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य पर गाँधी का उदय चंपारण, खेड़ा तथा अहमदाबाद में किसानों एवं मजदूरों के संघर्ष में उनकी रचनात्मक मध्यस्थता के बाद हुआ। युद्ध के पश्चात, वह लगभग आम सहमति से कांग्रेस के नेतृत्व के लिए उम्मीदवार के रूप में उभर रहे थे, मुख्यतः बालगंगाधर तिलक की खराब तबीयत के कारण। अहिंसा में उनके विश्वास तथा सत्याग्रह के ज़रिए संघर्ष की उनकी पद्धति से जनता भी परिचित हो गई थी। रौलट विरोधी आंदोलन और खिलाफत आंदोलन युद्ध के बाद की दो व्यापक लामबंदियाँ थीं जो औपनिवेशिक सरकार के विरुद्ध निर्देशित की गई थीं, और गाँधी ने इन दोनों में ही मुख्य किरदार निभाया। यह कहा जा सकता है कि यह उनका नेतृत्व ही था जिसने राष्ट्रवादी और खिलाफत – दो साम्राज्यवाद विरोधी धाराओं के जुड़ाव को संभव बनाया।

खिलाफत के नेता एकदम शुरुआत से ही हिन्दुओं के सहयोग को प्राप्त करने के इच्छुक थे। इस प्रयास में, उन्होंने गाँधी को अपने सबसे महत्वपूर्ण सहयोगी के रूप में पाया। गाँधी ने उन्होंने आगे खिलाफत से जुड़े मुद्दों पर मुस्लिम जोर को स्वशासन की राष्ट्रवादी मांग से जोड़ने की कोशिश की। उन्होंने घोषित किया कि 'मुसलमानों के मुद्दों के उचित समाधान में स्वराज्य की अनुभूति छुपी है।' उनका यह प्रयास अभूतपूर्व हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने में सफल हुआ जो औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध जनलामबंदियों में प्रतिबिंबित हुई। रौलट विरोधी आंदोलन के दौरान हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक साथ प्रदर्शन किया और एकता के प्रतीकों को खुलकर जनता के सामने लाया गया। खिलाफत के नेताओं ने मुसलमानों से बकराईद के त्यौहार के लिए गाय न काटने का आह्वान किया। आर्य समाज के एक नेता स्वामी श्रद्धानंद से दिल्ली में जामा मस्जिद के उपदेश मंच से भाषण देने की गुज़ारिश की गई; अमृतसर में डॉ. सैफुद्दीन किचलू को स्वर्ण मंदिर की चाबी दी गई; कलकता में, पहली बार नाखुदा मस्जिद में हिन्दुओं को प्रवेश दिया गया; मुम्बई में, दोनों समुदायों के नेताओं ने सक्रिय रूप से प्रतिबंधित राजनीतिक साहित्य को बेचने का प्रयास किया। पूरे आंदोलन के दौरान इसी प्रकार एकता का प्रदर्शन किया गया।

20 मार्च, 1919 को मुम्बई में एक खिलाफत समिति का निर्माण किया गया। समिति में प्रमुख स्थानीय मुसलमान व्यापारी थे, जिन्होंने आरंभ में उदारवादी निर्णय लिए और उनके क्रियाकलाप शांति सम्मेलन में टर्की के लिए बेहतर बर्ताव सुनिश्चित करने हेतु बैठकों, याचिकाओं और प्रतिनिधि मंडलों तक सीमित थे। हालांकि, बाद में उलेमा प्रेरित अतिवादी प्रवृत्ति थी जिसने आंदोलन को इसकी संकीर्ण सीमाओं से परे धकेला। अतिवादी आंदोलन के समर्थकों ने रौलट विरोधी आंदोलन का पूरे हृदय से सहयोग किया और वे औपनिवेशिक सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन प्रारंभ करना चाहते थे। एक अखिल भारतीय खिलाफत दिवस 17 अक्टूबर 1919 को मनाया गया, जिसे बड़ी सफलता मिली। बाज़ार बंद कर दिए गए थे; उपवास, प्रार्थनाएँ, बैठकें और हड़ताल किए जा रहे थे। दिल्ली, मद्रास और बॉम्बे में बड़ी संख्या में श्रोतागण अपने नेताओं को सुनने के लिए इकट्ठा हुए। यह स्पष्ट था कि नया मुस्लिम नेतृत्व बहुत व्यापक शहरी श्रोताओं तक पहुंच रहा था। इसके

महानगर एक अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन 23-24 नवंबर, 1919 को दिल्ली में आयोजित किया गया जिसमें गाँधी को भी बुलाया गया। शांति समझौते के दौरान तुर्की के प्रति अन्यायपूर्ण बर्ताव के संबंध में सम्मेलन ने कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए; मुसलमानों द्वारा शांति समारोह का बहिष्कार, सरकार के साथ असहयोग, और ब्रिटिश सामग्री का बहिष्कार। गाँधी का नाम नेता होने के लिए घोषित किया गया जिनके निर्देशन के तहत आंदोलन को आगे ले जाया गया और जिनको हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के द्वारा सम्मान प्राप्त था। गाँधी स्वयं अपने राष्ट्रवादी उद्देश्य के लिए पूर्ण समर्थन चाहते थे और इसलिए वह दोनों आंदोलनों को साथ लाने के विरोध में नहीं थे, बशर्ते वे उनकी राजनीति की पद्धति के अनुरूप हो। इस प्रकार, 1920 के आरंभ में उन्होंने घोषित किया कि खिलाफत से जुड़े मुद्दे सांविधानिक सुधारों और यहां तक कि पंजाब में हुई नृशंषता से भी अधिक महत्वपूर्ण थे, और यदि शांति की शर्तें तुर्की के हितों के प्रतिकूल हुईं, तो वह असहयोग आंदोलन शुरू करने के लिए भी तैयार थे। इसके अतिरिक्त और भी मुद्दे थे जिनके लिए व्यापक आंदोलन की ज़रूरत थी। सरकार ने रौलट अधिनियम को रद्द करने से इनकार कर दिया, पंजाब में हुई नृशंषता की जांच हेतु नियुक्त हंटर समिति ने दोषियों को बचाने की कोशिश की। ब्रिटिश हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने जनरल डायर के जघन्य अपराध के पक्ष में वोट दिया और ब्रिटेन में, डायर को उपहारस्वरूप देने के लिए जनता से 30,000 पाउंड इकट्ठा किए गए।

शांति समझौते की शर्तें, जो मई 1920 में सार्वजनिक हो गईं, खिलाफत के नेताओं की इच्छाओं के लिए एक बड़ा आघात थीं। तुर्की द्वारा नियंत्रित ऑटोमन साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। अरब देश ऑटोमन साम्राज्य से स्वतंत्र घोषित कर दिए गए; सीरिया फिलिस्तीन और मेसोपोटामिया फ्रांस और ब्रिटिश जनादेश के तहत रखे गए; पूर्वी ट्रेस और स्मीरना ग्रीस को सौंप दिए गए; और यद्यपि कंसटैंटीनोपल तुर्की के साथ बना रहा, समुद्र संधियों को अंतर्राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। उनकी भावनाओं के ऐसे अपमान ने अधिकतर भारतीय मुसलमानों को आहत कर दिया। खिलाफत सम्मेलन द्वारा आयोजित बैठकों की श्रृंखला में, तथा इलाहाबाद में 1-2 जून 1920 को कांग्रेस सदस्यों के साथ आयोजित एक बैठक में सरकार के प्रति असहयोग कार्यक्रम की शुरुआत का निर्णय लिया गया, जिसमें शामिल था :

- सरकार द्वारा प्रदत्त टाइटलों का त्याग
- सेना और पुलिस सहित सभी प्रकार की सरकारी नौकरियों से इस्तीफा
- सरकार को करों का भुगतान न करना

गाँधी जी और खिलाफत के नेता दोनों ही जितनी जल्दी हो सके, असहयोग आंदोलन प्रारंभ करने के इच्छुक थे। तथापि, इसके लिए कांग्रेस का सहयोग आवश्यक था। कांग्रेस के कुछ नेता इस कार्यवाही के विरोध में थे, क्योंकि उन्हें लगा कि खिलाफत जैसा धार्मिक मुद्दों पर आधारित एक आंदोलन भारतीय राजनीति के विकास के लिए अनुकूल नहीं होगा। उनकी शंका एक सीमा तक जायज़ थी। खिलाफत आंदोलन का शब्दकोश पूरी तरह से मुस्लिम उन्मुख था तथा इस्लामिक विचारधारा एवं बयानबाजी से भरा हुआ था। यहां तक कि उनके बीच सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रवादी, जैसे कि मौलाना आज़ाद के तर्क, गैर-मुस्लिमों (अर्थात् ब्रिटिश) के एक समूह के विरुद्ध, गैर-मुस्लिमों (अर्थात् हिन्दू) के दूसरे समूह के साथ गठबंधन के समर्थन में थे। आंदोलन की संपूर्ण कार्यप्रणाली के ज़रिए पूरा जोर दो समुदायों के पृथक अस्तित्व और ब्रिटिशों, जिन्हें भारत में हिन्दुओं, मुसलमानों और तुर्की में खलीफा दोनों के विरुद्ध हमलावरों के रूप में देखा गया, के विरुद्ध उन्हें एकजुट करने की आवश्यकता पर

था। इसलिए, यद्यपि खिलाफत आंदोलन अपने अभिविन्यास में साम्राज्यवाद विरोधी था, परन्तु इसकी अभिव्यक्ति की भाषा मुख्यतः इस्लामिक थी।

हालांकि दूसरे स्तर पर आंदोलन की कार्रवाई के दौरान सशक्त राष्ट्रवादी भावनाएँ व्यक्त की गईं और सांप्रदायिक सौहार्द के लिए लगातार अपीलें की गईं। इसके अतिरिक्त खिलाफत के नेताओं ने महात्मा गाँधी और कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए रौलट सत्याग्रह जैसे राष्ट्रवादी साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का पूरे हृदय के साथ समर्थन किया तथा मुसलमानों का इसमें पूरी तरह से भाग लेने के लिए आह्वान किया जिसका परिणाम था इस आंदोलन की विशाल सफलता। गाँधी और शौकत अली ने असहयोग के उद्देश्य के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करने हेतु पूरे देशभर में साथ-साथ दौरा किया। दूसरे खिलाफत के नेता भी महात्मा गाँधी के नेतृत्व के तहत इस उद्देश्य के लिए समर्थन जुटाने में सक्रिय थे। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि 1920 की ग्रीष्म के दौरान, इन दो आंदोलनों का जुड़ाव था।

12.5 प्रमुख चरण

असहयोग आंदोलन औपचारिक रूप से 1 अगस्त, 1920 को प्रारंभ किया गया था। वह दिन बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु के कारण भी उल्लेखनीय है, जो इस महान राष्ट्रीय नेता के गुजर जाने पर हड़तालों और जुलूसों का गवाह बना।

सितंबर, 1920 को कलकत्ता में असहयोग के मुद्दे पर अंततः विचार करने और निर्णय लेने हेतु कांग्रेस का एक विशेष सत्र आयोजित किया गया। इसमें परिषद् में प्रवेश के इच्छुक कुछ लोगों के विरोध के बाद भी इसे स्वीकृति दे दी गई। दिसंबर 1920 को नागपुर में, कांग्रेस के नियमित सत्र के समय तक असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम बिना किसी विरोध के स्वीकार कर लिया गया। इसमें सम्मिलित था— सरकारी टाइटलों तथा मानद पदों का त्याग, सरकारी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों, न्यायालय और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार। इसे सरकारी नौकरियों से त्यागपत्र देने और सरकारी कर के भुगतान के अस्वीकार तक भी विस्तारित किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों को स्थापित करने, विवादों के निपटारे हेतु पंचायतों के निर्माण और उन्हें सशक्त करने, हाथ की कताई एवं बुनाई को बढ़ावा देने, अस्पृश्यता की निंदा और त्याग करने, सांप्रदायिक सौहार्द का संरक्षण करने और अहिंसा का कड़ाई से पालन करने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार पहली बार कांग्रेस द्वारा जन लामबंदी का एक खुला विशेष सांविधानिक कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।

जनवरी से मार्च 1921 तक आंदोलन का विशेष जोर सरकारी विद्यालयों, महाविद्यालयों और न्यायालयों के बहिष्कार तथा चरखे के प्रयोग पर था। हजारों छात्रों ने विद्यालय और महाविद्यालय छोड़कर 800 राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों, जो पूरे देश भर में आगे आए थे, उससे जुड़े। कलकत्ता और लाहौर में व्यापक छात्र आंदोलन हुए और शैक्षिक बहिष्कार मुख्यतः बंगाल और पंजाब में सफल रहे। यद्यपि न्यायालयों का बहिष्कार उतना सफल नहीं रहा, फिर भी देश के कई प्रमुख वकीलों, जैसे— सी.आर. दास, मोतीलाल नेहरू, सैफुद्दीन किचलू, सी. राजगोपालाचारी, एम.आर. जयकर, बल्लभ भाई पटेल, आसफ अली और टी. प्रकाशम ने अपनी प्रैक्टिस छोड़ दी। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार बहुत सफल कार्यक्रम रहा। हजारों स्वयंसेवक घर-घर जाकर स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता के बारे में लोगों को समझाने की कोशिश करते थे। विदेशी निर्मित कपड़े इकट्ठा करके जला दिए गए। विदेशी कपड़ा बेचने वाली दुकानों का घेराव भी किया गया। इसका प्रभाव असाधारण

था। ऐसे वाणिज्य वस्तु के आयात की कीमत 1920-21 में 102 करोड़ रुपए से गिरकर 1921-22 में 57 करोड़ रुपए हो गई। ब्रिटिश सूती कपड़े के थान का आयात 1920-21 में 1292 मिलियन याडर्स से गिरकर 1921-22 में 955 मिलियन रह गया। कई व्यापारियों ने विदेशी कपड़े में सौदा न करने की कसम खाई। दूसरा बहिष्कार आंदोलन शराब और ताड़ी की दुकानों के विरुद्ध था जिसके कारण सरकारी राजस्व में पर्याप्त गिरावट आई। उत्पाद शुल्क राजस्व पंजाब में 33 लाख तथा मद्रास में लगभग 65 लाख तक गिर गया।

आंदोलन का अगला चरण मार्च 1921 में कांग्रेस के विजयवाड़ा सत्र से शुरू हुआ। यह निश्चित किया गया कि अगले तीन महीने में पार्टी के लिए एक करोड़ सदस्यों को भर्ती करने, तिलक स्वराज कोष के लिए एक करोड़ रुपए जमा करने और 20 लाख चर्खे लगाने और बांटने पर ध्यान केंद्रित किया जाए। इस चरण ने काफी हद तक अपने उद्देश्यों को प्राप्त किया : तिलक कोष में चंदा ज्यादा जमा कर लिया गया, 50 लाख सदस्यों को भर्ती किया गया एवं चर्खे वृहद् स्तर पर लोकप्रिय हो गए तथा खादी आंदोलन का परिधान बन गई।

आंदोलन का तीसरा चरण उच्च स्थिति पर पहुँचा जब जुलाई 1921 में मुहम्मद अली ने एक चुनौतीपूर्ण भाषण में घोषित की कि 'ब्रिटिश सेना में सेवारत रहना मुसलमानों के लिए धार्मिक स्तर पर अन्यायपूर्ण' है, और उन्हें त्यागपत्र देने के लिए कहा तथा दूसरा, जब नवंबर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स के दौरे का सफलतापूर्वक बहिष्कार किया गया। औपनिवेशिक सरकार ने मुहम्मद अली को कुछ अन्य नेताओं के साथ तुरंत गिरफ्तार कर लिया। इस चरण के दौरान दूसरा महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी अभियान प्रिंस ऑफ वेल्स के दौरे के विरुद्ध था। 17 नवंबर को वह जैसे ही बॉम्बे में उतरे उनका स्वागत पूरे शहर में हड़तालों और प्रदर्शनों से हुआ जिसका समापन कहीं-कहीं हिंसा से हुआ। वह जहां भी गए हड़ताल और प्रदर्शन हुए।

चौथे चरण में, असहयोग आंदोलनकारी और सरकार दोनों ही टकराव की मुद्रा में दिखे। हसरत मोहानी जैसे खिलाफत के नेता ब्रिटिश शासन से पूर्ण स्वतंत्रता की मांग के पक्ष में थे। जमीनी स्तर पर कांग्रेस बड़ी संख्या में लोगों के बीच प्रभावी थी और इसका स्वयंसेवी दल लगभग पुलिस फोर्स के समान बन गया था। कांग्रेस ने अपनी प्रांतीय समितियों को स्वीकृति दे दी थी कि जहां भी आवश्यक लगे, वह सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ कर दें। दूसरी तरफ सरकार अपनी आधिकारिक नीतियों की तरह दमन करना प्रारंभ कर चुकी थी। बड़े पैमाने पर लोग बंदी बनाए गए, बैठकों पर रोक लगी और स्वयंसेवी दलों का निषेध हुआ। हिंसा का डर दोनों पक्षों में बढ़ रहा था, और यह गाँधी जी को सबसे ज्यादा परेशान कर रहा था, जो न सिर्फ मुख्यतः असहयोग आंदोलनकारियों के बीच हिंसा से घृणा करते थे, बल्कि डरते भी थे कि राज्य का तीव्र दमन आंदोलन को कुचल देगा। उनकी शंका सही साबित हुई जब गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा में 5 फरवरी, 1922 को पुलिस ने प्रदर्शनकारियों की एक भीड़ को उकसाया। लोगों ने पुलिस पर हमला किया जिन्होंने बदले में गोलियाँ चलाई। इससे क्रोधित होकर लोगों ने पुलिस स्टेशन के भवन में आग लगा दी और उसमें कई पुलिसकर्मियों की मृत्यु हो गई। जब गाँधी जी ने इस हिंसक घटना के बारे में सुना उन्होंने आंदोलन को वापस लेने का निश्चय कर लिया, जिसकी बाद में कांग्रेस कार्यकारी समिति द्वारा पुष्टि की गई।

इसके तुरंत बाद 10 मार्च, 1922 को गाँधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया और 6 सालों के लिए जेल भेज दिया गया। कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारणों से खिलाफत आंदोलन का भी क्षय होने लगा। असहयोग आंदोलन की वापसी एक बड़ा धक्का थी और खिलाफत

के नेताओं ने वापसी के निर्णय के प्रति क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया की। यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय स्थितियाँ भी अनुकूल नहीं थीं। तुर्की ने स्वयं पहले मुस्तफ़ा कमाल के नेतृत्व के तहत 1922 में ऑटोमन सल्तनत को समाप्त कर दिया और फिर 1924 में स्वयं खलीफ़ा के पद को समाप्त कर दिया। इसके पश्चात्, आंदोलन को जारी रखने का औचित्य बहुत कम रह गया।

चौरी-चौरा की घटना के बाद आंदोलन की वापसी को कई तरीकों से व्याख्यायित किया गया। गाँधी के समकालीन जैसे – मोतीलाल नेहरू, सुभाष बोस, जवाहर लाल नेहरू और अन्यो ने इसे हिंसा से जुड़े एक प्रश्न के रूप में देखा। बाद में मार्क्सवादी समीक्षकों जैसे आर.पी.दत्त और ए.आर. देसाई ने यह तर्क करते हुए कि यह जनता के विद्रोह का डर था जिसके कारण वापसी का निर्णय लिया गया, इसे एक वर्ग के नज़रिए की तरफ मोड़ दिया। इस दृष्टि से गाँधी और ब्रिटिश दोनों एक ही पक्ष में थे और दोनों ही यह नहीं चाहते थे। कई पेशेवर इतिहासकार, जैसे— सुमित सरकार और ज्ञानेंद्र पाण्डेय ने आंदोलन की वापसी को गाँधी और कांग्रेस के नियंत्रण बनाए रखने की आवश्यकता और एक स्वतःस्फूर्त आंदोलन की राजनीतिक अनिच्छा से जोड़ा। आंदोलन पर से नियंत्रण खो देने के डर ने इसकी वापसी के लिए प्रेरित किया। दूसरी तरफ बिपिन चंद्र ने विशेषतः अपने बाद के लेखनों में, इसे व्यापक आधिपत्य प्राप्त करने हेतु कई चरणों में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को कार्यान्वित करने के लिए दीर्घकालिक राष्ट्रवादी रणनीति के हिस्से के रूप में देखा। शाहिद अमीन ने असहयोग आंदोलन, विशेषतः चौरी-चौरा घटना की पूरी तरह से अलग कोण से जांच-पड़ताल करते हुए कहा है कि कैसे लोगों ने गाँधी को अपने तरीके से समझा और अपने कार्य हेतु वैध करने वाले यंत्र के रूप में उनका नाम इस्तेमाल किया। इसलिए लोगों के लिए गाँधी के नाम पर हिंसात्मक घटनाओं में भाग लेना पूरी तरह से संगत था।

12.6 साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों में आंदोलनों का योगदान

खिलाफत और असहयोग आंदोलन ने भारतीय जनता में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना जगाने और प्रसारित करने में अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आरंभ में विभिन्न समुदायों में अभूतपूर्व एकता थी। हिन्दुओं और मुसलमानों ने साथ-साथ पूरे देश भर में आंदोलन में हिस्सा लिया और प्रायः खिलाफत तथा असहयोग आंदोलनों की बैठकों में भेद करना मुश्किल हो जाता था। मालाबार घटनाओं के अतिरिक्त जिसमें मुस्लिम किसानों ने बड़ी संख्या में हिन्दू जमींदारों के खिलाफ विद्रोह किया, उनकी हत्या की और उनमें से कई का धर्म परिवर्तन किया, हिन्दू-मुस्लिम एकता इस पूरी अवधि के दौरान बरकरार रही। कुछ स्थानों पर असहयोग आंदोलन के दौरान जो लोग गिरफ्तार हुए, उनमें से दो तिहाई मुस्लिम थे। गाँधी ने इस रिश्ते को बनाए रखने और कार्य-संपादन करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा जो असहयोग आंदोलन सामने लेकर आया, वह था जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध युद्ध की आवश्यकता। गाँधी को पहली बार राष्ट्रीय राजनीति के सम्मुख इस मुद्दे को प्रभावी ढंग से लाने के लिए श्रेय दिया जाना चाहिए। तब से यह मुद्दा राष्ट्रवादी राजनीति के लिए काफी महत्वपूर्ण रहा। सामाजिक न्याय की आवश्यकता को स्पष्टता से पहचाना गया, आगे बढ़ाया गया और बाद में स्वतंत्र भारत के संविधान में प्रतिस्थापित किया गया।

सशक्त उपनिवेशविरोधी आंदोलन जनता के विभिन्न हिस्सों में थे। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, दोनों में इस अवधि के दौरान मध्य वर्ग के अतिरिक्त विशेष रूप से किसान और मजदूर

सक्रिय थे। इस अवधि के दौरान कई किसान और मजदूर आंदोलन हुए। अकेले सिर्फ 1921 में 6,00,351 मजदूरों को लेकर 396 हड़तालें हुईं और 6,994,426 कार्यदिवसों की हानि हुई। किसान आंदोलन और भी ज्यादा प्रमुख थे। संयुक्त प्रांत के अवध क्षेत्र में, राजस्थान के मेवाड़ में और उत्तरी बिहार के कई जिलों में हजारों लोगों को लेकर बहुत सशक्त किसान आंदोलन हुए। यहां तक कि शहरी क्षेत्रों में विभिन्न मध्यम वर्ग समूहों द्वारा पूरे देश भर में हिस्सेदारी अभूतपूर्व थी। इसके अतिरिक्त गाँधी के असहयोग पर अनुरोध से आंदोलन में बड़ी संख्या में औरतें शामिल हुईं। औरतों की इस प्रकार की लामबंदी उनकी घरों की दीवारों से मुक्ति और राष्ट्रवादी आंदोलन दोनों के लिए ही बहुत महत्वपूर्ण घटना थी।

इस प्रकार, गाँधी के नेतृत्व के तहत इन आंदोलनों ने कई अर्थों में भारतीय राजनीति की संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण सफलता को देश भर में विभिन्न भागों की जनता की लामबंदी और उनमें राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना के निर्माण के रूप में जानना चाहिए।

12.7 सारांश

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ऑटोमन साम्राज्य के आकार में आसन्न घटाव और तुर्की पर ब्रिटिश दबाव के मद्देनजर खिलाफत का मुद्दा भारतीय मुसलमानों के लिए केंद्रीय चिंता का मुद्दा हो गया था। भारत में औपनिवेशिक शक्ति के रूप में ब्रिटेन की मौजूदगी के कारण ये धार्मिक भावनाएँ और भी तीव्र हो गईं। इस प्रकार, भारतीय मुसलमानों की धार्मिक और साम्राज्यवाद विरोधी भावनाओं ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक बहुत सशक्त प्रतिक्रिया का निर्माण किया। दूसरी तरफ, युद्ध के पश्चात् भारतीयों के लिए कुछ हद तक स्वशासन के वादे को पूरा करने में औपनिवेशिक सरकार की विफलता ने राजनीतिक रूप से सक्रिय समूहों में असंतोष पैदा कर दिया। इसके अतिरिक्त रौलट एक्ट ने फिर से भारतीयों की एक बड़ी संख्या की भावनाओं को ठेस पहुंचाया। और रौलट विरोधी आंदोलन के पश्चात् जालियां वाला बाग की नृशंस अंतिम तिनका थी। ऐसे समय पर गाँधी जी ने एक योग्य नेतृत्व दिया और साम्राज्यवाद विरोधी इन आंदोलनों की विभिन्न धाराओं को एकजुट किया जो देश भर में लाखों ग्रामीण और शहरी जनता को सम्मिलित करते हुए असहयोग आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। यद्यपि आंदोलन खलीफ़ा को बचाने या भारत के लिए स्व-शासन सुरक्षित करने के उद्देश्यों में असफल रहा, परन्तु इसने बड़ी संख्या में लोगों को लामबंद किया और उन्हें उनके राजनीतिक अधिकारों की चेतना से परिपूर्ण कर दिया। देश के धूल भरे कोनों में सिमटी छोटी और शक्तिहीन जनता विश्व के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़ी हुई और अपनी आज़ादी के लिए आवाज़ उठाया। अपने आप में, यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी, जिसकी आकांक्षा कोई भी आंदोलन रख सकता था।

12.8 अभ्यास

- 1) खिलाफत आंदोलन की प्रकृति तथा असहयोग आंदोलन के निर्माण में इसकी भूमिका पर चर्चा करें।
- 2) असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम क्या था?
- 3) असहयोग आंदोलन की मुख्य उपलब्धियाँ क्या थीं?

इकाई 13 क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ*

संरचना

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 पृष्ठभूमि
- 13.3 प्रारंभिक विकास
- 13.4 विचारधारात्मक प्रेरणा का आरंभिक उत्स
- 13.5 नई क्रांतिकारी चेतना का प्रारंभ
- 13.6 एचआरए का जन्म (हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन)
 - 13.6.1 एचआरए की विचारधारा और कार्यक्रम
 - 13.6.2 काकोरी षडयंत्र कांड
- 13.7 एचएसआरए का निर्माण और गतिविधियाँ
 - 13.7.1 साइमन कमीशन और क्रांतिकारी
 - 13.7.2 असंबली बम धमाका
 - 13.7.3 लाहौर षडयंत्र कांड
 - 13.7.4 चिटगांग शस्त्रागार छापा
- 13.8 सारांश
- 13.9 अभ्यास

13.1 प्रस्तावना

19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में क्रांतिकारी विचारधारा का आविर्भाव, युवाओं के मस्तिष्क पर कई आंतरिक तथा बाह्य प्रभावों का परिणाम था। 19वीं सदी के अंत का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था धार्मिक पुनरुत्थान का विकास। इसके अतिरिक्त, कई विदेशी प्रभाव थे, जैसे— अमेरिकी स्वतंत्रता के युद्ध का प्रभाव, स्वतंत्रता के लिए आइरिश संघर्ष, इटली का एकीकरण, मैज़िनी और गैरीबाल्दी का जीवन, रूस पर जापान की विजय और अंततः रूस में ज़ार के शासन के विरुद्ध क्रांति। इन सभी पक्षों ने एक साथ मिलकर राष्ट्रवादी संघर्ष में एक सशक्त क्रांतिकारी तत्व को जन्म दिया।

13.2 पृष्ठभूमि

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में उदारवादी राजनीतिज्ञों द्वारा हुई और वे शिक्षित उच्च भारतीय वर्ग को एक आम राजनीतिक मंच पर लाने में सफल रहे। यद्यपि कांग्रेस पार्टी भारतीय समाज के सबसे प्रगतिशील हिस्से का प्रतिनिधित्व कर रही थी, फिर भी वह राष्ट्रवाद की लहर, जो 19वीं सदी के अंतिम वर्षों के दौरान भारत में व्यापक रूप से बह रही थी, के साथ गति मिलाने में विफल रहे। पुनर्जागरण, प्राचीन भारतीय अतीत के पुनः खोज की ओर ले गया। उग्रवाद की भावना धार्मिक जागरण के फलस्वरूप आई जिसने अपना समर्थन हिन्दू पुनरुत्थानवाद को दिया तथा राष्ट्रीय परंपरा के लिए सम्मान की भावना को मजबूत किया। यह धर्म और राजनीति का अजीब घोल था। इस समय

* इकाई लेखक – प्रो. एस. इरफान हबीब

अधिकतर क्रांतिकारी नेता अत्यंत ही धार्मिक थे। वे अपने देश को और वो सब कुछ जो भारतीय था, उसे प्यार करते थे। विदेशी शासन, विदेशी वस्तुएँ, पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य विचार और पाश्चात्य जीवन जीने के तरीके सबकी अवमानना के वस्तु थे।

महाराष्ट्र और बंगाल क्रांतिकारी क्रियाकलापों के दो शक्तिशाली केंद्र के रूप में उदित हुए। बाल गंगाधर तिलक और सावरकर महाराष्ट्र में विचार, संगठन और नेतृत्व प्रदान कर रहे थे, वहीं बंकिमचंद्र, अरविंदो घोष और स्वामी विवेकानंद ने यही कार्य बंगाल में किया। तिलक ने गीता की क्रांतिकारी और राजनीतिक व्याख्या की और अर्जुन को दिए गए कृष्ण के उपदेश और कर्तव्य के प्रति भगवद्गीता के आह्वान से अत्यंत प्रभावित थे। तिलक ने उग्रवादी स्वप्नों तथा राजनीतिक उद्देश्य हेतु शिवाजी और गणपति त्यौहारों को नयी दिशा दी। उनके भाषणों, लेखनों तथा क्रियाकलापों ने युवा चापेकर भाइयों को हिन्दू धर्म संरक्षिणी सभा का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया, जो कई घृणा के पात्र ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या के लिए उत्तरदायी थी। चापेकर भाइयों के कष्टों और शहादत से दुखी होकर सावरकर ने 1900 में नासिक में एक मित्र मेला नामक संस्था की शुरुआत की। 1904 में यह 'अभिनव भारत समाज' में परिवर्तित हो गया तथा पूना में स्थापित कर दिया गया। शीर्षक मैज़िनी के 'यंग इटली' से लिया गया था। इस सभा ने बैठकें आयोजित करने, प्रकाशन निकालने और शिवाजी एवं गणपति त्यौहार मनाने में सक्रियता से भाग लिया।

बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन ने अपनी प्रेरणा बंकिम चंद्र चटर्जी के लेखन और स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों से ग्रहण की। क्रांतिकारी मत के लिए दूसरे उल्लेखनीय सहायक थे अरविंदो घोष। प्रमथनाथ मित्रा ने 1901 में 'अनुशीलन समिति', जिसका नाम बंकिम के लेखन से लिया गया था, नामक संगठन की स्थापना की। अरविंदो घोष, सी.आर. दास, बरिन्द्र घोष और जतिन बनर्जी भी इसमें शामिल हो गए। भगवद्गीता का प्रयोग कई प्रकाशनों में अलग-अलग तरीके से किया गया। आनंद मठ की हर्ष ध्वनि 'बंदे मातरम्' (जय माँ) बंगाल में उग्रवादी पार्टी का सिंहनाद बन गई। सौम्य दुर्गा देवी की छवि में मातृभूमि की भविष्यगत महानता देखी जा सकती है, ऐसी घोषणा करते हुए बंकिम ने मातृभूमि के विचार को धार्मिक महत्व दिया। नई क्रांतिकारी धर्म शिक्षा या शक्ति के पंथ ने बंगालियों से उनके उत्पीड़कों का खून बहाने का आह्वान किया।

यद्यपि धार्मिक पुनरुत्थान ने साम्राज्यवादियों के लिए अवमानना पैदा की और स्वाधीनता के लिए तड़प जगाई, लेकिन इसने मुसलमानों की बड़ी आबादी को इसकी श्रेणी से विमुख कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि उस दौर के विचारकों ने अपने राष्ट्रवादी आह्वान को इस प्रकार कसे हुए संरचनात्मक तरीके से स्पष्ट कर दिया कि उनके 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की दृष्टि में सहभागिता करने हेतु किसी बाहरी के लिए कोई संभावना नहीं दिख रही थी।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन मैज़िनी और गरिबाल्दी के जीवन, कई आइरिश क्रांतिकारी, 1905 में रूस पर जापान की विजय और फ्रांस, अमेरिका तथा रूस के क्रांतिकारी सिद्धांत से बहुत प्रभावित था। बी.सी.पाल ने भारत में नव राष्ट्रवाद के जन्म के सिद्धांत स्रोतों में से एक बनने के लिए मैज़िनी से प्रेरणा ली। एनी बेसेंट ने भी मैज़िनी और अरविंदो की तुलना करते हुए एक ही प्रकार के व्यक्तियों के रूप में उनकी व्याख्या की। वी.डी. सावरकर ने मैज़िनी की आत्मकथा को मराठी में अनूदित किया।

13.3 आरंभिक विकास

जब क्रांतिकारी विचार इन प्रभावों के तहत अपनी ज़मीन तैयार कर रहे थे, तो 1905 में बंगाल विभाजन एक बम की तरह गिरा। क्रांतिकारी ताकतें प्रशासनिक कुशलता के रूप में 'स्वदेशी के विरुद्ध स्वदेशी का समबल' और 'बांटो और राज करो' के पुराने खेल को समझ गई थीं। लोगों ने रूसी पद्धति का अनुकरण करना प्रारंभ कर दिया और 23 दिसंबर, 1907 को ढाका में एक पूर्व मजिस्ट्रेट को मारने की कोशिश की गई। अगला निशाना मुज़फ्फरपुर का मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड था जिसने कई युवाओं को कोड़े लगाने का आदेश दिया था। मुज़फ्फरपुर में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने गलती से दो निर्दोष ब्रिटिश महिलाओं पर बम फेंका क्योंकि उनकी गाड़ी ठीक मिस्टर किंग्सफोर्ड जैसी ही थी। मुज़फ्फरपुर कांड के परिणाम पर तिलक ने कहा कि, 'भारत में बम की उपस्थिति ने भारतीय राजनीति के दृष्टिकोण को बदल दिया।' उन्होंने भारत सरकार से विनती की कि 'बम का उत्तर राजनीतिक सुधार था, दमन नहीं।'

1908 में बनारस में सचिन्द्रनाथ सान्याल ने 'अनुशीलन समिति' को स्थापित किया, जिसका नामकरण बाद में यंग मैन्स एसोसियेशन के रूप में हुआ। हरदयाल भी अमीरचंद और दीनानाथ के साथ सक्रिय हो गए। लेकिन 1911 में हरदयाल अमेरिका चले गए। इसलिए, रासबिहारी बोस के पहुंचने तक दिल्ली ग्रुप निस्तेज रहा। बोस ने इस ग्रुप को सक्रिय किया और लिबर्टी नामक पत्रिका का प्रारंभ किया जो लोगों को बम बनाना सिखाती थी। जल्द ही, 23 दिसंबर, 1912 को वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्स को मारने का प्रयास हुआ जिसमें वह बिना घायल हुए निकल गया। इस प्रयास के आयोजकों ने एक विज्ञप्ति जारी की और वायसरॉय को मारने के प्रयास की सराहना की। इसने वायसरॉय को मारने के प्रयास को उचित ठहराने हेतु धार्मिक शास्त्रों के जानकारों का आह्वान किया : 'गीता, वेद और कुरआन सभी हमें जाति, नस्ल और रंग का ख्याल किए बिना हमारी मातृभूमि के सभी शत्रुओं का विनाश करने हेतु आदेश दे रहे हैं।' रास बिहारी गिरफ्तारी से बच गए, जबकि चार लोग इस दिल्ली षडयंत्र कांड में फांसी पर चढ़ा दिए गए। रास बिहारी बोस और उनके साथियों ने भारतीय सैनिकों की सहायता से एक साथ होने वाले विद्रोह में एक नया प्रयास किया। योजना का भेद तय तिथि 21 फरवरी, 1915 से पहले ही खुल गया और सभी प्रमुख क्रांतिकारियों को घेर लिया गया। रास बिहारी पुनः गिरफ्तारी से बच निकले और इस क्रांतिकारी संघर्ष को जारी रखने के लिए जापान पहुंच गए।

दमन की ब्रिटिश नीतियों के कारण कई षडयंत्र कांड हुए जिसमें कई क्रांतिकारी मारे गए। क्रांतिकारी क्रियाकलापों में एक खामोशी छा गई थी किन्तु मणिपुर के गेंदालाल दीक्षित ने क्रांति की मशाल को कुछ समय तक जलाए रखा। वह जल्द ही मणिपुरी षडयंत्र कांड में गिरफ्तार हो गए और अपनी रिहाई के बाद दुखद परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई। जो नेता गिरफ्तारी से बच निकले थे और खुफिया तरीके से देश छोड़कर चले गए थे, उन्होंने अपनी निर्वासन भूमि से संघर्ष जारी रखा। कइयों ने रहने के लिए अमेरिका को चुना क्योंकि भारतीय क्रांतिकारियों ने अमेरिका को 'स्वतंत्रता और अवसर की भूमि' के रूप में देखा। मई 1913 में हरदयाल ने सैन फ्रांसिस्को से गदर नामक अखबार निकालना शुरू किया। बाद में अखबार के नाम पर ही गदर पार्टी नाम रखा गया। पार्टी वास्तव में धर्मनिरपेक्ष थी और उसका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश राज का पराभव और स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित पंचायत राज (गणतंत्रवादी राज्य) को स्थापित करना था।

गदर की भावना सुदूर पूर्व तक गई और बरकतुल्ला खान द्वारा इसकी शाखा जापान में स्थापित की गई, कुछ अन्यो ने भी यही कार्य हांग कांग और शंघाई में भी किया। महान

युद्ध के प्रकोप से, काबुल भी कुछ प्रमुख विद्रोहियों का मिलन स्थल बन गया था। यहीं पर राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा भारत की अस्थायी सरकार स्थापित हुई। राजा महेन्द्र प्रताप इसके राष्ट्रपति और बरकतुल्लाह खान प्रधानमंत्री बने।

13.4 विचारधारात्मक प्रेरणा का आरंभिक उत्स

इस दौर के क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों, लेखनों और भाषणों ने एक सशक्त धार्मिक पूर्वाग्रह, रोमांटिकता और भावनावाद को उद्घाटित किया। उनमें से कई आश्वस्त थे कि “विशुद्ध रूप से राजनीतिक प्रचार देश के लिए फलदायी नहीं होगा और कि जनता को खतरों का सामना करने के लिए आध्यात्मिक रूप से प्रशिक्षित करना होगा।” लेकिन उनका धर्म देश की बहुसंख्यक जनता जिसे मानती थी उससे अलग था। वे एक निश्चित सीमा तक नियम-निष्ठ व्यक्ति थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे सोचते थे कि एक क्रांतिकारी के जीवन के लिए यह अपरिहार्य है। वहीं दूसरी तरफ वे हर प्रकार की संकीर्ण मानसिकता तथा पूर्वाग्रह जो व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में बाधाएं खड़ी करती हैं, के विरुद्ध थे। धार्मिकता के प्रभुत्व के बावजूद क्रांतिकारी समूह के लोगों में धर्मनिरपेक्षता या यहां तक कि धार्मिक धाराएँ शामिल थी। भूपेन्द्रनाथ दत्त ने सिर्फ हिन्दू शास्त्रों की शपथ लेने से इनकार कर दिया। आरंभिक क्रांतिकारियों में से कुछ ने शिकायत की कि हिन्दू रस्में संभात्य मुस्लिमों हमदर्दी को पृथक् कर रही थीं। मिदनापुर में हेमचंद्र कानूनगो और उनके कॉमरेडों ने कई क्रांतिकारियों के धर्म विरोधी रुख को और बल दिया। दिलचस्प है कि सत्येन्द्रनाथ बसु, कनार्शलाल दत्त और खुदीराम बसु सहित चार में से तीन आरंभिक शहीद नास्तिकों में से थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आरंभिक क्रांतिकारियों की विचारधारा में कमजोरी थी और क्रांति के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए धार्मिक उपदेशों पर उनकी निर्भरता में कमियाँ अन्तर्निहित थीं, फिर भी किसी संदेह से परे, यह भी स्पष्ट है कि कट्टर क्रांतिकारियों के लिए सशस्त्र संघर्ष के ज़रिए भारत की मुक्ति उनका सर्वोच्च उद्देश्य थी और उन्होंने इस प्रयोजन को पूर्ण करने हेतु धर्म को सिर्फ एक साधन के रूप में देखा। क्रांतिकारी आंदोलन के शुरुआती चरण का आकलन करते समय इस पक्ष को कम आंकना या अनदेखा नहीं करना चाहिए। उन्होंने अपने और दूसरे देशों के क्रांति के इतिहासों से उदाहरण लेकर क्रांतिकारी योजना और क्रांतिकारी विचारधारा हेतु खोज प्रारंभ की। उन्होंने सामाजिक सुधार का उपदेश नहीं दिया लेकिन सदियों पुराने श्रद्धेय रीति-रिवाजों की दीवारों को तोड़ा। क्रांतिकारी आंदोलन की बढ़ती हुई उन्नति के रास्ते में जिसने भी बाधाएँ खड़ी की उन्होंने उन सबके खिलाफ विद्रोह किया। भावनावाद और रोमांसवाद की अपनी कमजोरियों से वे सिर्फ इस अनुभूति के द्वारा ही बाहर आ सकते थे कि क्रांति निश्चित कानूनों द्वारा शासित एक सामाजिक प्रक्रिया है। रूस में बोल्शेविक क्रांति के प्रभावों के साथ ही क्रांतिकारियों को इसकी अनुभूति हुई।

13.5 नई क्रांतिकारी चेतना का प्रारंभ

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान विश्व की आर्थिक स्थिति बदतर हो गई। सभी युद्धरत देशों में शांतिकाल उद्योग और कृषि बहुत ही खराब स्थिति में थे। इसके साथ-साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर थे, जो खाली खजाने को फिर से भरने के लिए किसानों और मजदूरों से वसूल किए जा रहे थे। ब्रिटिश सरकार प्रथम विश्व युद्ध की अवधि के दौरान भारत में राजनीतिक भावनाओं के तूफान से अवगत थी। विल्सनियन भावना, युद्ध के दौरान ली गई पवित्र प्रतिज्ञा और अगस्त 1917 की मांटेग्यू घोषणा जनता या वर्गों को नियंत्रित करने के

लिए काफी नहीं थी। वे इन घोषणाओं को ठोस कार्रवाइयों के मुताबिक चाहते थे लेकिन जल्द ही स्वतंत्र अभिव्यक्ति और राजनीतिक क्रियाकलापों का गला घोटने के लिए उपयुक्त रौलट अधिनियम के आने से ब्रिटिशवादों के बारे में सभी भ्रम टूट कर बिखर गए। भारत सुरक्षा अधिनियम के प्रावधान की समय सीमा युद्ध की समाप्ति के 6 महीने बाद खत्म होने वाली थी।

यह एक सार्वभौम अवमानना का सहगान था, जिसमें यहां तक कि कांग्रेस और उदारवादियों जैसे भारतीय राजनीति के सुविज्ञ तत्व भी सम्मिलित हुए। गाँधी जी ने पूरे देश में हड़ताल और विरोध आयोजित करने का आह्वान किया। इस आंदोलन के मद्देनज़र, 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में जालियाँ वाला बाग हत्याकांड हुआ। यह भारत में राष्ट्रवादी चेतना के जबर्दस्त विकास का अप्रत्यक्ष लाभ था। फरवरी 1921 में गाँधी जी ने ड्यूक ऑफ कर्नाट को लिखा, “हम अपनी समस्त शक्ति के साथ उस अ-अंग्रेजी चरित्र के साथ लड़ने को प्रतिबद्ध हैं जिसने डायरिज़्म को संभव बनाया।” उन्होंने असहयोग आंदोलन और ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार की शुरुआत की। उन्होंने 31 दिसंबर, 1921 तक स्वतंत्रता प्राप्त करने का आश्वासन दिया और क्रांतिकारियों से यह अपील की कि वे अपनी गतिविधियों को एक साल तक बंद कर दें। क्रांतिकारियों ने गाँधी को आश्चर्य किया कि वे अगले एक साल तक अपनी हिंसक गतिविधियों को निलंबित रखेंगे। उत्साह में भरकर कई विद्यार्थियों ने महात्मा के आह्वान पर अपनी पढ़ाई छोड़ दी और स्वतंत्रता हेतु संघर्ष के लिए खुद को पूर्णतः समर्पित कर दिया। उस समय के आर्थिक और श्रम संबंधी संकटों ने आग में ईंधन का काम किया तथा चौरा-चौरा की घटना के बाद महात्मा द्वारा आंदोलन को स्थगित कर दिए जाने की वजह से उनके युवा कार्यकर्ताओं में अत्यधिक निराशा फैल गई। कई युवा, जैसे— चंद्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह, सुखदेव, मन्मथनाथ गुप्त तथा कई अन्य राजनीति के साथ नैतिकता को जोड़ने की गाँधी की संकल्पना की सराहना नहीं कर सके, जिस संकल्पना ने लोकप्रिय आंदोलन को एक प्राणघातक धक्का दिया था। वे हिंसक पंथ की तरफ खींचे चले आए और इस प्रकार एक महान आंदोलन के आकस्मिक अंत ने भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों का पुनरुत्थान देखा।

13.6 एच.आर.ए. का जन्म (हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन)

गाँधीवादी प्रयोगों से निराशा के अतिरिक्त बोल्शेविक क्रांति के प्रभाव अधिक से अधिक महसूस किए गए और इसने क्रांतिकारी समूहों के क्षितिज को और विस्तार दिया। ‘समाजवाद, यद्यपि बहुत स्पष्टता से नहीं समझा गया, फिर भी उनके मनोमस्तिष्क को आकर्षित कर रहा था और सामाजिक न्याय के आदर्श जो उस से पूर्व अस्पष्ट रूप में थे, एक अलग आकार लेने की दिशा में बढ़ रहे थे।’ यह सिर्फ क्रांतिकारियों की युवा पीढ़ी ही नहीं थी जो नये विचारों के प्रति खुला दृष्टिकोण रखती थी, बल्कि बड़ों ने भी ‘1924 में सोवियत क्रांति और साम्यवाद की चर्चा करना प्रारंभ कर दिया था।’ विश्व युद्ध के पश्चात् कामगार वर्ग के उभार ने उन सबको अत्यधिक प्रभावित किया। उन्होंने इस नई सामाजिक शक्ति को सावधानीपूर्वक देखा। वे नए वर्ग के क्रांतिकारी संभावनाओं को देख सकते थे तथा इसे राष्ट्रवादी क्रांति के लिए उपयोग में लाने की इच्छा रखते थे।

इस उद्देश्य के साथ यू.पी. और पंजाब के क्रांतिकारियों ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच.आर.ए.) का 1924 में गठन किया। एच आर ए के संविधान में इसके उद्देश्यों की चर्चा की गई “एक संगठित और सशस्त्र क्रांति के द्वारा भारत के राज्यों के संयुक्त संघीय गणतंत्र की स्थापना”। इस संघ ने यह परिकल्पित किया कि “गणतंत्र का आधारभूत सिद्धांत सार्वत्रिक मताधिकार की स्थापना तथा उन सभी व्यवस्थाओं का उन्मूलन होगा जो

मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण संभव बनाती हैं।” यह “किसानों और मजदूरों के संगठन के लिए प्रतिबद्ध थी क्योंकि यह पूंजीवाद और सामंतवाद के विरुद्ध सफल संघर्ष के लिए अनिवार्य था। एच आर ए के कार्यक्रम इस बात को उद्घाटित करते हैं कि इसके सदस्य और संस्थापक अपने विचारों में आगे बढ़ चुके थे। वे सिर्फ भगवद्गीता, आनंदमठ, अरविंद, विवेकानंद और उग्र राष्ट्रवादियों से ही प्रेरित नहीं थे बल्कि उन्होंने रूसी, फ्रांसीसी और आइरिश क्रांतियों के बारे में भी पढ़ा। 1916 और 1920 के दौरान इसके मुख्य संस्थापक जोगेश चंद्र चटर्जी समाजवादी विचारों से अवगत हुए।

13.6.1 एच आर ए की विचारधारा और कार्यक्रम

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन अवधारणात्मक रूप से एक संकुचित निःस्वार्थ देशभक्ति से एक प्रकार के अस्पष्ट समाजवाद – और यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीयतावाद की तरफ परिवर्तित हुआ। ये 1 जनवरी, 1925 को प्रकाशित ‘दि रेवोल्यूशनरी’ नामक इनके पैम्फलेट में स्पष्ट हो गया, जिसे भारत के रेवोल्यूशनरी पार्टी का घोषणापत्र कहा गया। इस पैम्फलेट ने एक विशाल जनसंख्या के सामने यह उजागर किया कि क्रांतिकारी कुछ विशिष्ट उच्च सामाजिक आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। ‘दि रेवोल्यूशनरी’ शीर्षक वाला यह पैम्फलेट नीत्यों के इन शब्दों से प्रारंभ होता है—

“अराजकता एक नये तारे के जन्म के लिए आवश्यक है” तथा जीवन का जन्म ही पीड़ा और दर्द के साथ हुआ। भारत भी एक नया जन्म ले रहा है, तथा उस अपरिहार्य अवस्था से गुज़र रहा है, एक ऐसी अवस्था से जब अराजकता तथा पीड़ा अपनी नीयत भूमिका निभाएंगे, जब सारी गणनाएँ व्यर्थ सिद्ध हो जाएंगी, जब बुद्धिमान और शक्तिशाली साधारण और कमजोर से घबराए हुए होंगे, जब महान साम्राज्य खंडित हो जाएंगे और जब नए राष्ट्र उदित होंगे तथा वे अपने वैभव और प्रतिष्ठा से जो उनके नितांत अपने होंगे, मानवता को अचंभित कर देंगे। एच आर ए ने अपने घोषणापत्र में घोषित किया कि ‘रेवोल्यूशनरी पार्टी इस अर्थ में राष्ट्रीय नहीं अपितु अंतर्राष्ट्रीय है कि इसका अंतिम लक्ष्य विभिन्न देशों के विविध प्रकार के हितों के आदर तथा गांरटी द्वारा विश्व में सौहार्द ले आना है; इसका लक्ष्य विभिन्न देशों और राज्यों के बीच प्रतियोगिता नहीं अपितु सहयोग है।’

एच आर ए ने पुराने क्रांतिकारियों के तरीकों पर विश्वास किया और उसी के अनुसार कार्य भी किया। इसने औपनिवेशिक सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संघर्ष में भी विश्वास किया। इनके घोषणापत्र में स्पष्ट रूप से घोषणा की गई कि विदेशियों द्वारा “भारत पर शासन करने का कोई औचित्य नहीं है सिवाय तलवार के औचित्य के और इसलिए रेवोल्यूशनरी पार्टी ने तलवार उठाई।” तथापि अगले वाक्य में एच आर ए द्वारा की गई तरक्की को स्पष्ट किया गया। “किन्तु रेवोल्यूशनरी पार्टी की तलवार पर विचारों की धार है।”

13.6.2 काकोरी षडयंत्र कांड

एच आर ए द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों में एक था – काकोरी ट्रेन डकैती कांड जिसे काकोरी षडयंत्र कांड के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लिखित है कि एच आर ए औपनिवेशिक सरकार के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही में विश्वास रखता था, उन्होंने धन एकत्र करने के उद्देश्य से इस डकैती की योजना बनाई, जिसकी उन्हें सख्त ज़रूरत थी। 9 अगस्त 1925 को रामप्रसाद बिस्मिल, असफ़ाक उल्लाह खॉं, चन्द्रशेखर आज़ाद, मन्मथनाथ गुप्ता, राजेन लाहिड़ी तथा अन्य से युक्त समूह ने लखनऊ के निकट काकोरी नामक स्थान पर एक ट्रेन को रोका तथा गार्ड के डिब्बे से सरकारी खजाने को लेकर भाग

गए। किसी भी निर्दोष यात्री को हानि नहीं पहुंचाई गई। कुछ ही महीने के अंदर लगभग सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए तथा प्रसिद्ध काकोरी षडयंत्र कांड के अंतर्गत इन पर मुकदमे चले। उनमें से चार को फांसी दे दी गई जिसमें बिस्मिल और असफ़ाकउल्लाह शामिल थे तथा अन्यो को अलग अलग अवधि का कारावास दिया गया।

13.7 एच एस आर ए का निर्माण और गतिविधियाँ

1920 के दशक के उत्तरार्ध में भारी आर्थिक मंदी आई और उसके उपरांत मजदूरों की प्रचंड लहर उठी। भारत का मजदूर वर्ग तेजी से बोल्शेविक के प्रभाव में आ रहा था जिसकी वजह से कई मजदूर संघ बने जिनका अलग-अलग साम्यवादी झुकाव था। इसके अलावा 1928 और 1929 में युवा आंदोलन हुए जिनमें पूर्ण स्वतंत्रता तथा आमूल सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों की मांग रखी गई। जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस दोनों ने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य की स्वीकृत हेतु अभियान को आगे ले जाने के लिए कांग्रेस के अंदर दबाव गुट के रूप में इंडिपेंडेंस ऑफ इंडिया लीग को आगे बढ़ाया तथा अप्रैल 1929 में लीग की यू. पी. शाखा ने जिसे इस तरह से व्याख्यायित किया था, "एक ऐसा समाजवादी लोकतांत्रिक राज्य जिसमें विकास हेतु प्रत्येक व्यक्ति को पूरा अवसर प्राप्त हो... जिसमें राज्य का उत्पादन के साधन और वितरण पर नियंत्रण हो।" परन्तु एक बार फिर से कांग्रेस का यह वामपंथी सैद्धांतिक आमूल परिवर्तनवाद संगठन या ठोस कार्यों में पर्याप्त अभिव्यक्ति को प्राप्त नहीं कर पाया। जवाहरलाल नेहरू गाँधी द्वारा प्रश्नांकित किए जाने के बाद युवाओं को कुंठित और आंदोलित छोड़कर कांग्रेस की उदारवादी बुर्जुआ राजनीति की ओर वापस लौट गए।

एच आर ए कांग्रेस के मौखिक आमूल परिवर्तनवाद से कुंठित थी, और वह स्वयं भी काकोरी षडयंत्र कांड के पश्चात् कमजोर और शक्तिहीन हो चुकी थी। अतः इसने संगठन के पुनर्निर्माण का निश्चय किया। अनुभवी क्रांतिकारियों की एक काफी बड़ी संख्या सलाखों के पीछे थी तथा बाकी गिरफ्तारी से बचने के लिए भूमिगत हो गए थे। इन परिस्थितियों में भगत सिंह, सुखदेव, शिव वर्मा, चंद्रशेखर आज़ाद और विजय कुमार सिन्हा के नेतृत्व में एच आर ए के युवा सदस्यों ने दल को पुनः संगठित करने का कार्य अपने हाथों में लिया। प्राथमिक रूप से इसी उद्देश्य हेतु कानपुर में 1927 में, इसके महत्वपूर्ण सदस्यों की एक बैठक हुई। इसके तुरंत बाद 8 और 9 सितंबर, 1928 को फिरोज शाह कोटला, दिल्ली के भग्नावशेषों के रोमानी परिवेश में एच आर ए के केंद्रीय समिति के निर्माण हेतु एक अन्य महत्वपूर्ण बैठक हुई। यह एक महत्वपूर्ण बैठक थी जिसमें यू.पी., बिहार, पंजाब और राजस्थान से दस प्रतिभागियों ने भाग लिया। बैठक में संगठन हेतु एक उन्नत क्रांतिकारी समाजवादी दृष्टिकोण के साथ एक क्रांतिकारी कार्यक्रम को स्वीकार किया गया। अंततः भगत सिंह और उनके साथी अपने आलोचकों को इस बात के लिए मनाने में सफल हो गए कि एसोसिएशन को अपने एक मुख्य लक्ष्य के रूप में समाजवाद को शामिल कर लेना चाहिए। इस प्रकार अंततः हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का नाम बदलकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन हो गया।

एच आर ए का लक्ष्य था संयुक्त राज्य भारत का संघीय गणतंत्र बनाना जिसका आधारभूत सिद्धांत वयस्क मताधिकार होगा। वहीं जैसा कि इसके नाम से ही इंगित है एच एस आर ए ने एक सोशलिस्ट रिपब्लिक (समाजवादी गणतंत्र) को स्थापित करने के लिए लक्ष्य की घोषणा की। इसके काफी पहले भगत सिंह और उनके साथी भारत में एक समाजवादी गणतंत्र की स्थापना के विशिष्ट लक्ष्य को लेकर लाहौर में नवजवान भारत सभा की स्थापना कर चुके थे। भगत सिंह को विश्वास था कि भारत की मुक्ति सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता

में ही नहीं अपितु आर्थिक स्वतंत्रता में निहित है। नवनिर्मित एच एस आर ए ने यह भी निर्णय लिया कि इसके सैनिक अपने घरों का त्याग कर देंगे, अपने परिवारों से कोई संपर्क नहीं रखेंगे तथा पार्टी के कार्यों के लिए अपना सारा समय और ऊर्जा समर्पित कर देंगे। धार्मिक संप्रदायवाद और कर्मकांडवाद प्रतिबंधित था।

13.7.1 साइमन कमीशन और क्रांतिकारी

पंडित जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि “1928 का वर्ष राजनीतिक रूप से आप्लावित वर्ष था जिसमें पूरे देश में ढेर सारी गतिविधियाँ हुईं।” ट्रेड यूनियन आंदोलन अपने आप को धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहा था तथा इसकी उग्र विचारधारा मजदूरों के बीच वर्ग चेतना को बढ़ा रही थी। इस प्रकार के विद्युतीय वातावरण में 3 फरवरी, 1928 को साइमन कमीशन बाम्बे पहुँचा। यह पूर्णतः गोरों से युक्त कमीशन था जिसकी नियुक्ति भारत की राजनीतिक स्थिति को रिपोर्ट करने तथा समीक्षा करने के लिए की गई थी। इस कमीशन में किसी भी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया जिसे देश के सभी राजनीतिक दलों ने राष्ट्रीय गरिमा का अपमान माना। देश के बड़े भाग ने एक मत से इसका बहिष्कार करने का निर्णय लिया। बाम्बे में इसका स्वागत हड़ताल से हुआ और ‘साइमन वापस जाओ’ के नारे लगे। कई स्थानों पर पुलिस और जनता के बीच झड़पें हुईं परन्तु लाहौर में पानी सिर के ऊपर से गुजर गया। लाहौर में साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन का नेतृत्व लाला लाजपत राय ने किया और जब वे सड़क के किनारे खड़े थे, तो एक युवा अंग्रेज पुलिस अधिकारी ने उन पर हमला किया और उनकी छाती पर डंडे से वार किया। लाला जी, जो कि हृदय रोग के मरीज़ थे, की छाती पर किया गया यह सख्त प्रहार प्राणघातक सिद्ध हुआ। उनकी मृत्यु ने संपूर्ण देश में आक्रोश की लहर पैदा की और देश के नौजवानों ने इसे राष्ट्र पर हुए हमले के रूप में देखा। एच एस आर ए ने निर्णय लिया कि वह स्कॉट नामक उस व्यक्ति की हत्या कर देगा जो प्रमुख पुलिस कार्यकारी था और घटनास्थल पर मौजूद था।

अपनी जान पर खतरे को भांपकर स्कॉट ने पुलिस प्रशिक्षण विद्यालय में शरण ली जहाँ से वह यदा-कदा ही बाहर आता था। बाद में उसके डिप्टी सांडर्स को टारगेट के रूप में चुना गया और कई दिनों तक उसकी आवाजाही पर निगरानी रखी गई। 17 दिसंबर, 1928 का दिन सांडर्स की हत्या के लिए निश्चित किया गया तथा राजगुरु, भगत सिंह और चंद्रशेखर आज़ाद को यह जिम्मेदारी सौंपी गई। डिप्टी सुपरिटेडेंट ऑफ पुलिस (उप अधीक्षक) की हत्या से लाहौर में सनसनी फैल गई। अगले दिन एच एस आर ए के लोगों द्वारा अंग्रेजी में लिखी लाल पर्चियाँ बांटी गईं जिनमें लिखा था “नौकरशाही को सतर्क किया जाता है। लाला लाजपत राय की हत्या का प्रतिरोध जे.पी. सांडर्स की हत्या से लिया गया है।” क्रांतिकारियों ने पर्चे में अपने उद्देश्य को यह कहते हुए दुहराया “एक व्यक्ति का रक्त बहाने का हमें दुख है परन्तु क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए रक्त बहाना आवश्यक है। हमारा लक्ष्य इस प्रकार की क्रांति है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत कर देगी।” यद्यपि यह ज्ञात हो चुका था कि सांडर्स की हत्या क्रांतिकारियों द्वारा की गई थी परन्तु पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने में विफल रही। भगत सिंह, राजगुरु और आज़ाद उन्हें चकमा देने में सफल रहे।

13.7.2 असेम्बली बम धमाका

एच एस आर ए ने यह योजना बनाई कि यदि गवर्नर जनरल की विशेष सख्तियों के ज़रिए पब्लिक सेफ्टी बिल (जन सुरक्षा अधिनियम) तथा ट्रेड डिस्म्यूट बिल (व्यापार मतभेद अधिनियम) पारित किए जाएँगे तो वे असेम्बली हॉल में बम फेंकेंगे। वे यह दर्शाना चाहते थे

कि यदि सरकार बहुमत की आवाज़ की उपेक्षा कर सकती है और गवर्नर जनरल की सख्तियों का सहारा लेकर अधिनियम को पारित करा सकती है तो एच एस आर ए भी उन्हें उसी भाषा में जवाब दे सकता है। ये अधिनियम मजदूरों और क्रांतिकारियों द्वारा सत्ता प्रतिष्ठान के विरुद्ध छेड़े गए संघर्ष को दबाने के लिए भारत सरकार द्वारा लाए गए। इन अधिनियमों पर टिप्पणी करते हुए भगत सिंह ने कहा :

‘ब्रिटिश उपनिवेशवाद में न्याय के लिए कोई स्थान नहीं है। वे दासों को सांस लेने की जगह भी नहीं देना चाहते और इसके बजाय उन्हें दबाना चाहते हैं। वे उन्हें लूटना और मारना चाहते हैं और अधिक से अधिक दमनकारी कानून पारित किए जाएंगे तथा विरोधी आवाजों को दबा दिया जाएगा। आइए, देखें क्या होता है सिर्फ बलिदान ही हमें इस दमन से बचा सकता है। असेंबली के भारतीय और ब्रिटिश सदस्यों की आंखें खोलनी ही होंगी।’

उन्होंने यह महसूस किया कि कामगार वर्ग की जागृति देश के राजनीतिक जीवन में एक नये मोड़ का संकेत है। अतः वे चाहते थे कि एच एस आर ए कुछ ऐसा करे जो श्रमिक और किसान आंदोलनों से पार्टी की एकात्मकता को प्रदर्शित कर सके। एच एस आर ए की केंद्रीय समिति ने पहले जयदेव कपूर और बी.के. दत्त को बम फेंकने के लिए भेजने का निर्णय लिया परन्तु सुखदेव के आग्रह और मित्रवत् सुझाव के बाद भगत सिंह, बी.के. दत्त के साथ गए। 8 अप्रैल, 1929 को असेंबली में बम के धमाके के गगनभेदी स्वर ने साम्राज्य के मूलाधार तक को हिला डाला। असेंबली के सदस्य अस्त-व्यस्त होकर भागने लगे। दोनों ही बम किसी को नुकसान पहुंचाए बिना फट गए। ये नौजवान धुंध का फायदा उठाकर बच के भाग सकते थे परन्तु वे वहीं खड़े रहे और ऊँची आवाज़ में नारे लगाते रहे :

“क्रांति अमर रहे”

“साम्राज्यवाद मुर्दाबाद”

“दुनिया के मजदूरों एक हो”

उन्होंने एच एस आर ए की तरफ से पर्चों के पुलिंदे फेंके और सारे संसार को अपना संदेश दिया। यह संदेश फ्रांसीसी क्रांतिकारी वैलिगेंट के इस उद्धरण से शुरू हुआ था “बहरों को सुनाने के लिए तेज आवाज़ में चिल्लाना पड़ता है”। दोनों घटनास्थल पर ही गिरफ्तार हो गए। इस प्रकार एक महान घटना घटित हुई जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की रीढ़ की हड्डी को सुन्न कर दिया और पूरे विश्व भर के स्वतंत्रता सेनानियों के हृदय को प्रफुल्लित कर दिया। भगत सिंह ने न्यायालय का प्रयोग समाजवाद के मत को लोकप्रिय करने हेतु एक मंच के रूप में किया। भगत सिंह के वक्तव्य ने यह स्पष्ट कर दिया कि एच एस आर ए सही अर्थों में जनता के लिए लड़ रहा था और यह भी स्पष्ट किया कि उनका इरादा वर्गविहीन समाज लाने का है। कुछ ही महीनों में न्यायालय ने उन्हें राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए दोषी पाया और 12 जून, 1929 को आजीवन कारावास की सज़ा दे दी। तथापि, भगत सिंह को लाहौर ले जाया गया जहां उन पर जे.पी. सांडर्स की हत्या के अभियोग में लाहौर षडयंत्र कांड में मुकदमा चलाया गया।

13.7.3 लाहौर षडयंत्र कांड

मुकदमा लगभग दो वर्षों तक चलता रहा और क्रांतिकारियों ने सरकार द्वारा उनके बारे में फैलाई गई गलतफहमियों को समाप्त करने हेतु न्यायालय के मंच का प्रयोग बहुत ही प्रभावी तरीके से किया। उन्होंने जेल में सभी राजनीतिक कैदियों के लिए रहने हेतु बेहतर परिस्थितियाँ और सुविधाएँ मुहैया कराने की मांग लेकर लंबी भूख हड़ताल की। ब्रिटिश सरकार द्वारा इन कैदियों के साथ सामान्य अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाता था। एक

क्रांतिकारी जतिन दास ने 63 दिन की भूख हड़ताल के पश्चात् 13 दिसंबर, 1929 को अपना जीवन बलिदान कर दिया इसकी वजह से संपूर्ण भारत में भयंकर हंगामा हुआ। अंततः 23 मार्च 1931 को सतलज नदी के किनारे भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी गई। इन तीन शहीदों को दिए गए प्राणदंड की पूरे भारत में निंदा की गई और विशेष रूप से भगत सिंह घर-घर में लोकप्रिय हो गए।

13.7.4 चिटगांग शस्त्रागार छापा

जब भगतसिंह और उनके साथी लाहौर षडयंत्र केस में जेल में थे और मुकदमे का सामना कर रहे थे, उसी समय बंगाल में सूर्यसेन ने एक क्रांतिकारी कार्यवाही की योजना बनाई। जिसे चिटगांग शस्त्रागार छापे के नाम से जाना जाता है। यह सुनियोजित छापा 18 अप्रैल 1930 को सूर्यसेन के नेतृत्व में, जो मास्टर दा के नाम से जाने जाते थे, मारा गया। उन्होंने टेलीग्राफ ऑफिस और टेलीफोन एक्सचेंज को अपने कब्जे में ले लिया और कलकत्ता और ढाका से जुड़ने वाली सभी संचार लाइनों को काट दिया। दूसरे समूह ने क्लब को अपने नियंत्रण में ले लिया। उन्होंने इस छापे के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए पर्चे बांटे। इन पर्चों पर सूर्यसेन ने इंडियन रिपब्लिकन आर्मी, चिटगांग शाखा की हैसियत से हस्ताक्षर किए। आक्रमण आगे कुछ वर्षों तक जारी रहे। तथा धीरे-धीरे क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए और बनावटी मुकदमों में उन्हें दंड दिया गया। फरवरी 1933 में सूर्यसेन को गिरफ्तार कर लिया गया जबकि 19 मई, 1933 को अल्पना दत्त और तारकेश्वर दस्तीदार को गिरफ्तार कर लिया गया। शस्त्रागार छापा कांड में सूर्यसेन और दस्तीदार को मौत की सजा सुनाई गई जबकि कई अन्य को आजीवन कारावास दिया गया। 12 जनवरी, 1934 को अपने अंतिम संदेश “आदर्श और एकता” तथा “एक स्वर्णिम स्वप्न... स्वतंत्र भारत का स्वप्न” के साथ सूर्यसेन को फांसी दे दी गई।

13.8 सारांश

क्रांतिकारी समूह 1930 के मध्य तक सक्रिय रहे परंतु बाद में अधिकतर समूह गिरफ्तारी और मिथ्या प्रचार के कारण कमजोर पड़ गये। तथापि, युवाओं के बीच लहर और जागरूकता पैदा करने में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके इस योगदान का रचनात्मक इस्तेमाल महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जनांदोलनों में किया गया। हम प्रायः शुरुआती छिट-पुट घटनाओं से लेकर सांडर्स की हत्या, असेंबली बम धमाका, चिटगांग षडयंत्र कांड की कार्रवाइयों द्वारा क्रांतिकारियों के किए गए महत्वपूर्ण योगदान की उपेक्षा कर देते हैं। इस तथ्य के बावजूद कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में अग्रभाग में रही, हम भारतीय क्रांतिकारियों द्वारा स्वतंत्रता के कार्य को आगे बढ़ाने हेतु किए गए अमित योगदानों की उपेक्षा नहीं कर सकते।

13.9 अभ्यास

- 1) भारत में क्रांतिकारी आंदोलन के आरंभिक विकास की चर्चा कीजिए।
- 2) एच आर ए और एच एस आर ए के मध्य क्या अंतर था?
- 3) 1920 के दशक के उत्तरार्ध तथा 1930 के दशक के पूर्वार्ध के दौरान क्रांतिकारियों की विचारधारा और गतिविधियों की चर्चा कीजिए।

इकाई 14 परिषदों के भीतर और बाहर प्रतिरोध*

संरचना

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 पृष्ठभूमि
- 14.3 स्वराजवाद का सार
- 14.4 चुनाव में स्वराजवादी
- 14.5 असेंबली और परिषद् में स्वराजवादी
- 14.6 स्वराज पार्टी की प्रमुख उपलब्धियाँ
- 14.7 1926 के पश्चात् स्वराजवाद : अवसान, विघटन, विलय
- 14.8 साइमन कमीशन : असहयोग की वापसी
- 14.9 गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम
- 14.10 सारांश
- 14.11 अभ्यास

14.1 प्रस्तावना

असहयोग आंदोलन की वापसी और सविनय अवज्ञा की शुरुआत के बाद का समय सबसे अच्छी तरह से स्वराज पार्टी के क्रियाकलापों के ज़रिए समझा जा सकता है। स्वराज पार्टी का महत्व है कि इसने राष्ट्रवादी आंदोलन के भीतर राजनीतिक क्रियाकलापों के नए स्वरूप जो कि परिषद् का प्रवेश था, से परिचित कराया। इसने राष्ट्रवादी आंदोलन के क्षेत्र का विस्तार विद्यायी राजनीति और सांवैधानिक क्षेत्र के हृदय मुख्य केंद्र तक कर दिया। बाद में 1930 में यह कांग्रेस राजनीति के भीतर एक प्रभावशाली धारा बन चुकी थी, जब 1937 में कांग्रेस ने चुनाव लड़ा और सात प्रांतों में सरकार बनाई।

दो आंदोलनों के बीच का समय काफी महत्वपूर्ण है। इस दौरान राष्ट्रीय आंदोलन को ब्रिटिशों के विरुद्ध प्रत्यक्ष आंदोलन द्वारा नहीं, बल्कि स्वराज पार्टी के क्रियाकलापों तथा गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों के ज़रिए आगे बढ़ाया गया और इसे कायम रखा गया। यह समझना महत्वपूर्ण है कि जहां राष्ट्रीय आंदोलन के क्रियाकलापों की प्रकृति इस दौरान एक बदलाव से गुजर रही थी, तो भी इसने राष्ट्रीय आंदोलन के आधारभूत प्रक्षेप पथ में टूटन या विराम का संकेत नहीं दिया। इस इकाई में हम इस अवधि (1922–29) पर चर्चा करेंगे, उन संदर्भों पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जिनमें स्वराज पार्टी का जन्म हुआ और गाँधी द्वारा प्रारंभ किए गए रचनात्मक कार्यक्रमों की प्रकृति के बारे में बात करेंगे। यह इकाई स्वराज पार्टी के क्रियाकलापों के प्रत्यक्ष विस्तार के रूप में नेहरू रिपोर्ट और इससे जुड़े विवादों से भी आपको परिचित कराएगी।

14.2 पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय आंदोलन के लंबे जीवन में स्वराजवाद एक 'राजनीतिक प्रयोग' के रूप में समझा गया। इस प्रयोग का सार था कि राष्ट्रीय आंदोलन, सफल होने की प्रक्रिया में, राजनीतिक

* इकाई लेखक – प्रो. सलिल मिश्रा

जीवन और क्रियाकलापों के सभी क्षेत्रों तक पहुंचना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ राष्ट्रीय आंदोलन से विधायी निकायों तक विस्तार करना भी था। विधानमंडलों के भीतर औपनिवेशिक शासन को प्रश्नांकित किया जाना और चुनौती दी जानी थी। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास इस विचार के मुख्य नायक थे। उन्होंने 1923 में कांग्रेस के भीतर स्वराज पार्टी का गठन करके इसे एक ठोस आकार दिया। स्वराजवाद के विचार के जन्म की एक पृष्ठभूमि और एक संदर्भ था।

स्वराजवादी राजनीति की प्रेरणा 1919 के भारत सरकार अधिनियम के चरित्र तथा 1922 में असहयोग आंदोलन की वापसी द्वारा प्रदान की गई। चलिए इन दोनों पर संक्षेप में नज़र डालते हैं।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति ने भारतीयों के बीच इस हेतु अत्यधिक आशा और आकांक्षा का संचार किया कि वे ब्रिटिश शासन से महत्वपूर्ण संवैधानिक लाभ प्राप्त कर पाएंगे। इस तरह की सारी आशाएँ 1919 के भारत सरकार अधिनियम की घोषणा से कड़वी निराशा में बदल गईं। यह माना जाता है कि 1919 का अधिनियम कई अर्थों में 1909 के अधिनियम की तुलना में ज्यादा प्रतिगामी था। भारतीयों की प्रमुख निराशा इस तथ्य से संबंधित थी कि केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर विधायी संस्थाओं में सीटों का एक पर्याप्त अनुपात सरकार द्वारा नामित किए जाने वाले गैर-निर्वाचित सदस्यों द्वारा भरा जाना था। 145 सदस्यों में से 40 सरकार द्वारा नामित किए जाने थे। इसने निर्वाचित सदस्यों की शक्ति को काफी हद तक घटा दिया। 1919 के अधिनियम के अंतर्गत 1920 में पहले चुनाव कराए जाने थे। असहयोग आंदोलन के अंतर्गत (उपाधियों, सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं, न्यायालयों और विधानमंडलों) का बहिष्कार आंदोलन का एक अस्त्र था। इसी प्रकार की परिस्थितियों में, बंगाल के एक प्रमुख कांग्रेसी नेता सी.आर.दास ने यह तर्क दिया कि विधानमंडलों का बहिष्कार करने के बजाए कांग्रेसियों को चुनाव में भाग लेकर असेंबलियों में प्रवेश करना चाहिए और वहां से ब्रिटिश सरकार का विरोध करना चाहिए। इस प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने अस्वीकार कर दिया। यह स्वराजवाद पर विचार की शुरुआत थी।

चौरी-चौरा की हिंसक घटना के पश्चात् मई 1922 में असहयोग आंदोलन अचानक रुक गया। आंदोलन के वापस लिए जाने के तुरंत बाद गाँधी को गिरफ्तार कर लिया गया और छः साल के लिए करावास दे दिया गया। इस समय राष्ट्रीय आंदोलन एक चौराहे पर था और दो महत्वपूर्ण प्रश्न कांग्रेसी नेतृत्व के सामने थे :

- असहयोग आंदोलन को फिर से प्रारंभ किया जाए या नहीं?
- विधानमंडलों हेतु 1923 के चुनावों पर कांग्रेस का पक्ष क्या हो?

इस प्रश्न पर जनता की मनोदशा को जानने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने जून, 1922 में एक जांच समिति का गठन किया। इस समिति ने हकीम अज़मल खान, विट्ठलभाई पटेल, मोतीलाल नेहरू, श्रीनिवास अयंगर, एम.ए. अंसारी तथा सी. राजा गोपालाचारी शामिल थे। समिति ने देश का दौरा किया और अपनी रिपोर्ट पेश की। समिति के सभी सदस्य इस बात पर एकमत थे कि देश असहयोग के एक और चक्र के लिए तैयार नहीं है। तथापि परिषद् प्रवेश के मुद्दे पर मतवैभिन्य था। अज़मल खान, विट्ठल भाई पटेल और मोतीलाल नेहरू कांग्रेसियों के परिषद् में प्रवेश के पक्ष में थे जबकि बाकी सदस्य इसके विरोध में थे।

आने वाले महीनों में कांग्रेस का यह सूक्ष्म मतभेद और अधिक बढ़ गया और ऐसा लगने लगा जैसे यह मुद्दा कांग्रेस के संपूर्ण संगठन को विभाजित कर देगा। परिषद् प्रवेश की वकालत करने वाले प्रो.चेंजर्स (परिवर्तन समर्थक) तथा इसके विरोधी नो-चेंजर्स (परिवर्तन विरोधी) कहे गए। राजेंद्र प्रसाद और बल्लभभाई पटेल अन्य महत्वपूर्ण नो-चेंजर्स थे। चूंकि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति इस मुद्दे पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी अतः अंतिम निर्णय सितंबर 1922 में गया में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के लिए छोड़ दिया गया। चितरंजन दास उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। गया अधिवेशन में दोनों समूहों के बीच का वास्तविक मतभेद खुलकर सामने आ गया। प्रो-चेंजर्स यह चाहते थे कि कांग्रेसी चुनाव लड़ें, विधायी निकायों में प्रवेश करें तथा विधानमंडलों के अंदर ब्रिटिश शासन के सामने कड़ा प्रतिरोध पेश करें। दूसरी तरफ नो चेंजर्स को विश्वास था कि परिषद् प्रवेश असहयोग के भाव को मंद कर देगा और ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग माना जाएगा। उनका सुझाव था कि परिषद् प्रवेश के बजाय गाँधी के रचनात्मक कार्यों के ज़रिए राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाया जाना चाहिए। रचनात्मक कार्यों में शामिल था— हिन्दु-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देना, खादी और अस्पृश्यता के विरुद्ध सामाजिक अभियान। दोनों धड़ों ने अपने-अपने कार्यप्रणाली हेतु प्रचार किया। अंतिम निर्णय कांग्रेस के सामान्य सत्र के लिए छोड़ दिया गया। सामान्य कांग्रेसियों ने नो चेंजर्स के पक्ष में बहुमत दिया। उन्हें प्रोचेंजर्स के 890 वोटों की तुलना में 1740 वोट मिले। कांग्रेस में भारी मात्रा में मत परिषद् प्रवेश के विरुद्ध था, चूंकि यह निर्णय अध्यक्ष सी.आर.दास के विचार के प्रतिकूल था, उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।

प्रो-चेंजर्स हार अवश्य गये परन्तु वे निराश नहीं हुए। उन्हें यह प्रतीत हो गया कि कांग्रेस में एक बड़ा वर्ग परिषद् प्रवेश के पक्ष में है अतः गया कांग्रेस के तत्काल बाद उन्होंने अपने समर्थकों की एक सभा आयोजित की और कांग्रेस के अंदर एक नया दल बनाने का निर्णय किया। उन्होंने इसका नाम कांग्रेस खिलाफ़त स्वराज पार्टी रखा। इस नई पार्टी के अध्यक्ष थे सी.आर.दास और इसके जनरल सेक्रेटरी थे मोतीलाल नेहरू।

कांग्रेस के अंदर एक नए धड़े की स्थापना ने आपसी संदेह को जन्म दिया। कांग्रेस के अंदर विभाजन आसन्न प्रतीत होने लगा। कांग्रेस के नए अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद ने दोनों धड़ों के बीच एकता कायम करने की कोशिश की परन्तु वे सफल न हो सके। 1924 की शुरुआत ने ब्रिटिश सरकार ने गाँधी को उनके लगातार बिगड़ते स्वास्थ्य के आधार पर रिहा कर दिया। शुरु में गाँधी भी प्रो-चेंजर्स के पूर्णतः खिलाफ़ थे और उन्होंने परिषद् प्रवेश को कांग्रेस के असहयोग के कार्यक्रम के एक भाग के रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया। तथापि 1924 में कांग्रेस के बेलगाम सत्र में गाँधी और चितरंजन दास के मध्य एक समझौता हो गया। नये समझौते के अनुसार कांग्रेस नेतृत्व स्वराजवाद को कांग्रेस के कार्यक्रमों का आधिकारिक भाग मानने के लिए राजी हो गया और इस प्रकार कांग्रेस में होने वाला विभाजन टल गया।

14.3 स्वराजवाद का सार

स्वराज पार्टी (कांग्रेस खिलाफ़त स्वराज पार्टी) का नामकरण बहुत सोच समझकर किया गया था। इसके निर्माण के समय कांग्रेस के अंदर बहुत लोगों को इस पर संदेह था, वे इसे कांग्रेस विरोधी और ब्रिटिश समर्थक मानते थे। अपने निर्माण के पश्चात् इस पार्टी का पहला कार्य था कि वह इस गलतफहमी को दूर करे। कांग्रेस खिलाफ़त गठजोड़ से वे पूरी तरह सहमत थे और उन्होंने अपनी पार्टी को कांग्रेस के विकल्प के रूप में पेश नहीं किया। अपितु उन्होंने अपने स्वराजवादी प्रयोग को कांग्रेस के कार्यक्रमों के एक भाग के रूप में

मानकर कांग्रेस के साथ अपने जुड़ाव पर जोर दिया। संभवतः स्वराज पार्टी के अस्तित्व के बारे में सबसे पहला स्पष्टीकरण मोतीलाल नेहरू द्वारा अपने एक वक्तव्य में दिया गया। उन्होंने यह तर्क दिया कि बदली हुई परिस्थितियों में विधानमंडलों का बहिष्कार पुरातन पड़ चुका है अतः बहिष्कार की नीति बदलनी चाहिए। मोतीलाल नेहरू, अजमल खान, विट्ठलभाई पटेल द्वारा हस्ताक्षरित वक्तव्य में कहा गया :

‘समय अब बदल चुका है, परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं, संघर्ष की अवधि अनिश्चित रूप से लंबी है। लोगों के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करने वाले उपाय विधानमंडलों में वर्ष दर वर्ष अधिनियमित किए जाते हैं। लोगों के तथाकथित प्रतिनिधित्व के नाम पर और उसकी सहायता से नये-नये कर और विशालकाय भार लाद दिए गए हैं और चाहे अनचाहे लोगों को इसे स्वीकार करना है। इन परिस्थितियों में यह विचारणीय प्रश्न है कि जन सामान्य के ऊपर कांग्रेस की पकड़ कब तक अप्रभावित रह पाएगी। मान लीजिए कि परिषद् के वर्तमान रूप के बहिष्कार के अपने निर्णय पर कांग्रेस अड़ी रहे और अगर ऐसा हुआ कि भारी मात्रा में लोगों ने मतदान कर दिया तो हमारा दावा अनुचित सिद्ध हो जाएगा। हम इस बात पर विश्वास करने के लिए इच्छुक हैं कि बहिष्कार की राजनीति अपना आकर्षण खो चुकी है और यह संभव है कि मतदाताओं का एक भारी प्रतिशत आगामी चुनावों में मतदान करेगा। उस परिस्थिति में पिछले चुनावों में प्राप्त की गई सफलता भूतकाल की वस्तु हो जाएगी और संपूर्ण आंदोलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।’ (डी.जी. तेंदुलकर, महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गाँधी, वॉल्यूम-2, 1951, न्यू डेलही, पी.113, पर उद्धृत)

मोतीलाल नेहरू और सी.आर. दास दोनों का विश्वास था कि स्वराजवाद एक ऐसा प्रभावी रास्ता है जिसके ज़रिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद की सांवैधानिक साख को नष्ट किया जा सकता है। 1909 और 1919 के अधिनियमों के ज़रिए ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन के सांवैधानिक आधार को जमाने की कोशिश की थी। उन्होंने यह भी दावा किया कि (1917 में उनकी स्वशासन की घोषणा के ज़रिये) वे भारतीयों को धीरे-धीरे लोकतंत्र और स्वशासन के लिए तैयार कर रहे थे। स्वराज पार्टी के नेताओं के दावे के अनुसार, स्वराजवाद इन ब्रिटिश दावों के खंडन की कोशिश थी। उनका विश्वास था कि विधानमंडलों में प्रवेश के ज़रिए वे ब्रिटिश शासन के सांवैधानिक प्रयोगों को अशक्त और शून्य बना सकते हैं। सी. आर. दास ने एक वक्तव्य में इस बिंदू को स्पष्ट किया : “अभी तक हमने परिषद् का बाहर रहकर बहिष्कार किया... अब यह कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह परिषद् के अंदर से सफल बहिष्कार करे।” उनका विश्वास था कि 1919 के अधिनियम में लोकतंत्र की प्रस्तुति का जो दावा किया गया है, वह वस्तुतः एक छलावा है। वास्तविक शक्ति ब्रिटिश नौकरशाही के पास ही बनी रहेगी, परन्तु नौकरशाही की इस शक्ति का प्रभावी विरोध सिर्फ अंदर से ही किया जा सकता है। इस प्रकार, दास ने स्वराजवादियों की राजनीति के व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया :

‘हम असंबली और परिषदों में अपने मूल अधिकारों पर जोर देंगे इन, अधिकारों की स्वीकार्यता और सुरक्षा के लिए हम एक संविधान की मांग करेंगे। यह लगभग संभव है कि ब्रिटिश सरकार इसके लिए तैयार नहीं होगी। तब उसके बाद सभी स्वराजवादी सरकारी नौकरशाही के साथ असहयोग करेंगे। हम सरकार के प्रत्येक विधेयक का विरोध करेंगे। हम बजट पारित नहीं होने देंगे। हम सरकार के प्रत्येक प्रस्ताव को रोकेंगे। इस प्रकार, हम सरकार के द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक विधेयक को पछाड़ देंगे।

कुछ कांग्रेसियों ने स्वराजवादियों पर यह आरोप लगाया कि वे नकारात्मक और अवरोधक राजनीति कर रहे हैं। इस आरोप का जवाब देते हुए दास ने कहा: “हम ब्रिटिश नौकरशाही से हर तरफ से घिरे हुए हैं। इस परिस्थिति में कुछ नया निर्मित करना तब तक संभव नहीं

है, जब तक कुछ नष्ट न हो। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जहां हम कुछ नष्ट कर रहे हैं, तो हमारा लक्ष्य कुछ नया निर्मित करना भी है।” इस प्रकार यह स्पष्ट था कि स्वराजवाद को मुख्यधारा की कांग्रेसी राजनीति के विकल्प के रूप में निर्मित नहीं किया गया। अपितु यह कांग्रेस की राजनीति में एक नए आयाम को जोड़कर उसे समृद्ध करने का प्रयास ही था।

14.4 चुनाव में स्वराजवादी

1920, 1923 और 1926 में भारत सरकार अधिनियम के तहत चुनाव हुए। 1920 के चुनाव बहिष्कार के आधिकारिक कार्यक्रम के हिस्से के रूप में कांग्रेस द्वारा सर्वसम्मति से बहिष्कृत किए गए। स्वराज पार्टी ने 1923 और 1926 के चुनावों में भाग लिया। 1923 के चुनाव पार्टी के गठन के लगभग ठीक बाद ही हुए और इसकी वजह से उन्हें तैयारी के लिए काफी समय नहीं मिला। चुनाव नवंबर 1923 में होने वाले थे और अक्टूबर से पहले पार्टी चुनावों के लिए अपनी तैयारी नहीं शुरू कर पाई थी। प्रांतों और जिलों में चुनाव कार्यालय खोले गए। स्वयंसेवकों को लामबंद किया गया, प्रत्याशियों की सूची तैयार की गई। वित्तीय संसाधन जुटाये जाने थे, चुनाव प्रचार के लिए साहित्य, बुकलेट्स और पैम्फलेट्स तैयार कराये गये। अक्टूबर में पार्टी का घोषणापत्र जारी किया गया। इसमें स्वराज को पार्टी का चरम लक्ष्य घोषित किया गया। भारतीयों द्वारा अपने संविधान के निर्माण को स्वराज पार्टी के लक्ष्यों की पूर्ति की तरफ प्रमुख कदम के रूप में प्रचारित किया गया। यह स्पष्ट किया गया कि भारत की विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए ही भारत के लिए संविधान बनाया जा सकता है इसलिए इंग्लैंड में बैठी हुई एक विदेशी सरकार भारतीय स्थितियों के अनुरूप, भारत के लिए संविधान बनाने हेतु सक्षम नहीं थी। स्वराज पार्टी ने अपने घोषणापत्र में यह मांग रखी कि भारतीय लोगों को अपना संविधान बनाने का हक मिलना चाहिए। इस बात पर जोर दिया गया कि संविधान निर्माण का कार्य अंततः भारत को स्वराज की तरफ ले जाएगा।

अपना खुद का संविधान बनाने की मांग महत्वपूर्ण और नई थी। यह राष्ट्रवादी राजनीति में प्रस्तुत एक नया विचार था। ब्रिटिश शासकों ने समय-समय पर ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किए गए कुछ विशेष अधिनियम के ज़रिए भारत पर शासन किया था। उदारवादी राष्ट्रवादी नेतृत्व ने सामान्यतया बेहतर कानून अथवा प्रचलित कानूनों में सुधार की ही मांग रखी थी परन्तु इसने भारत के लिए कानून बनाने के ब्रिटिश सरकार के अधिकार पर प्रश्न नहीं उठाया। **अपना खुद का संविधान बनाने के लिए अधिकार की मांग पर जोर देकर स्वराजवादियों ने राष्ट्रवादी राजनीति में एक नया आयाम जोड़ा।** परिषद् प्रवेश की राजनीति अंत नहीं बल्कि शुरुआत थी। अंततः इसका समापन संपूर्ण संविधानवाद में होना था अर्थात् स्वयं भारतीयों द्वारा संविधान निर्माण। आने वाले वर्षों में, खासकर 1930 के दशक में, संविधान सभा की मांग राष्ट्रवादी राजनीति की केंद्रीय मांग बन गई और जवाहरलाल नेहरू ने इसे कांग्रेस के कार्यक्रम में शामिल किया। इस तरह स्वराजवाद उदारवादी राजनीति से काफी आगे चला गया और इसने उदारवादियों की सांविधानिक राजनीति तथा जवाहरलाल नेहरू की संविधान सभा की मांग को जोड़ने वाले सेतु का कार्य किया। इसके घोषणापत्र ने परिषद्-प्रवेश के अर्थ को भी स्पष्ट किया। स्वराजवादियों को यह निर्देश था कि उन्हें परिषद् और एसेंबली में किसी पद को स्वीकार नहीं करना। पार्टी की सदस्यता केवल कांग्रेसियों तक ही सीमित थी। पार्टी के सदस्यों को यह निर्देश था कि वे विधाइकाओं में कांग्रेसियों की तरह ही व्यवहार करें तथा कांग्रेस की गरिमा और सम्मान को बनाए रखें।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि यह पहली बार था जब राष्ट्रवादी नेता चुनावों में भाग लेने वाले थे। उन्हें चुनावी राजनीति का कोई अनुभव नहीं था। चुनावी गतिविधियों के उचित प्रबंधन के लिए सी.आर. दास (बंगाल केंद्रीय प्रांतों और मद्रास प्रेसीडेंसी के लिए), मोतीलाल नेहरू (संयुक्त प्रांत के लिए) और विट्ठल भाई पटेल (बांबे प्रेसीडेंसी के लिए) ने प्रांतों एवं केंद्र दोनों में चुनाव के आयोजन का कार्य अपने हाथों में लिया। कुल मिलाकर स्वराज पार्टी ने उ.प्र. में 25,000 और बंगाल में 30,000 रुपए खर्च किए। औसतन प्रत्येक चुनाव क्षेत्र के लिए 500 रुपए आवश्यक माने गए। तत्कालीन मानकों के हिसाब से भी यह बहुत बड़ी रकम नहीं थी।

1923 के चुनावों में पार्टी ने अच्छा प्रदर्शन किया परन्तु यह उसकी अपेक्षा से काफी कम था। निम्नलिखित तालिका चुनावों में स्वराज पार्टी के प्रदर्शन का परिचय देती है :

असंबली और परिषद्	कुल चयनित सीटें	स्वराज पार्टी द्वारा जीती गई सीटें
केंद्रीय विधान सभा	105	42
मद्रास परिषद्	98	14
बांबे परिषद्	86	23
बंगाल परिषद्	111	47
उ.प्र. परिषद्	101	31
केंद्रीय प्रांतीय परिषद्	54	40
पंजाब परिषद्	71	12
बिहार और उड़ीसा परिषद्	73	12
असम परिषद्	39	13

पार्टी ने केंद्रीय प्रांतों में बहुमत प्राप्त किया तथा केंद्रीय विधानमंडल बांबे और बंगाल में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। उत्तर प्रदेश में भी इसका प्रदर्शन प्रभावी रहा परन्तु देश के अन्य भागों में पार्टी का प्रदर्शन निराशाजनक रहा। कुल मिलाकर पार्टी ने 234 सीटें (केंद्र में 42 और राज्यों में 192) जीतीं। चुनाव की तैयारियों के लिए काफी कम समय होने के बावजूद यह प्रभावशाली प्रदर्शन था। कई स्थानों पर पार्टी उचित प्रत्याशियों की तलाश में सफल नहीं हो पाई। उदाहरण के लिए बांबे के 86 चुनाव क्षेत्रों में सिर्फ 24 प्रत्याशी उतार पाए और उसमें से 23 में उसने जीत दर्ज की। बिहार और उड़ीसा में इसने 13 प्रत्याशी उतारे, जिसमें से 12 जीते। इसी तरह उ.प्र. में पार्टी ने 33 उम्मीदवार उतारे, जिसमें से 31 जीते।

इस प्रकार 1923 से स्वराज पार्टी ने विधानमंडलों में अपनी राजनीति शुरू की। 1923 से 1936 के वर्ष परिषद्-प्रवेश की स्वराजवादी राजनीति के चरमोत्कर्ष के वर्ष थे इसने परिषदों में विरोध की राजनीति को एक ठोस आकार दिया। पार्टी ने सरकार के विरुद्ध वास्तविक और मनोवैज्ञानिक दोनों तरह की कुछ महत्वपूर्ण जीतें दर्ज कीं। पार्टी ने असंबली और विधान परिषदों में क्या किया?

14.5 असंबली और परिषद् में स्वराजवादी

मोतीलाल नेहरू केंद्रीय विधानसभा में विपक्ष के नेता बने। शुरुआती दौर में उन्होंने कोशिश की कि असंबली के अन्य भारतीय सदस्यों के बीच स्वराज पार्टी के एजेंडे के लिए समर्थन जुटाया जा सके। असंबली में शामिल थे— सरकार द्वारा नामित सदस्य चयनित सरकार सदस्य, उदारवादी और स्वतंत्र सदस्य जो किसी पार्टी से नहीं थे। इनमें से मोतीलाल नेहरू ने उदारवादियों और निर्दलीयों को लामबंद करने की कोशिश की। ऐसा उन्होंने स्वराज को उनकी पार्टी की मांग के रूप में नहीं अपितु सभी भारतीय सदस्यों की राष्ट्रीय मांग के रूप में चित्रित करके किया। उन्होंने सदन के पटल पर घोषणा की, “हमारे काम के तरीके अलग-अलग हैं, लेकिन इसके अलावा स्वराजियों, उदारवादियों और निर्दलीयों के बीच के मतभेद बहुत वास्तविक नहीं हैं।” इस तरह के परिप्रेक्ष्य ने उन्हें असंबली में सरकार के विरुद्ध एक विशाल संयुक्त मोर्चा बनाने में मदद की। वे अत्यंत सफलतापूर्वक तेजबहादुर सप्रू जैसे उदारवादी नेताओं और उदारवादी साम्प्रदायिक नेताओं जैसे— मोहम्मद अली जिन्ना और मदन मोहन मालवीय तक अपनी बात पहुंचाने में सफल रहे।

असंबली के प्रथम सत्र की शुरुआत के समय महात्मा गाँधी जेल में थे। असंबली में स्वराज पार्टी का पहला कार्य था कि वह सरकार को गाँधी को रिहा किए जाने की नोटिस दे। यह निश्चित था कि इस प्रस्ताव को अन्य भारतीय सदस्यों का समर्थन मिलता। अतः असंबली की मनःस्थिति को भांपते हुए जिस दिन यह प्रस्ताव पेश किया जाने वाला था, सरकार ने उसी दिन गाँधी को रिहा कर दिया। यह असंबली में स्वराज पार्टी की पहली विजय थी। फरवरी, 1924 में एक गैर-स्वराजी सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव पेश किया गया कि भारत सरकार अधिनियम 1919 की समीक्षा हेतु एक रॉयल कमीशन का गठन किया जाए ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत भारत को डोमिनियन स्टेटस मिल सके। मोतीलाल नेहरू ने एक संशोधन प्रस्तावित किया कि नए संविधान का निर्माण एक प्रतिनिधिक गोलमेज सम्मेलन द्वारा किया जाए और भारतीय विधायी असंबली से इसका अनुमोदन प्राप्त किया जाए। इस संशोधन का सरकारी बेंचों की तरफ से विरोध किया गया परंतु चुने हुए सदस्यों की तरफ से इसे जबरदस्त समर्थन मिला। यह स्वराज पार्टी की असंबली में पहली और शायद सबसे शानदार विजय थी।

1926 में स्वराज पार्टी ने राजनीतिक कैदियों को रिहा किए जाने हेतु एक प्रस्ताव पेश किया। असहयोग आंदोलन के दौरान कई राजनीतिक नेता गिरफ्तार किए गए थे। कुछ को बिना मुकदमे चलाए ही कारावास दे दिया गया था। कई क्रांतिकारी देश से निष्कासित भी कर दिए गए थे। अतः पार्टी ने यह मांग रखी कि राजनैतिक कैदियों को रिहा किया जाए और निर्वासित नेताओं को वापस आने दिया जाए। परन्तु उनकी इस मांग को असंबली में अन्य भारतीय सदस्यों का समर्थन नहीं मिला, फलस्वरूप यह प्रस्ताव पारित न हो सका। इस अवधि के दौरान (1923–1926) स्वराज पार्टी ने सरकारी बजट तथा अन्य सरकारी प्रस्तावों का विरोध किया। तथापि, असंबली में असहयोग की यह प्रक्रिया 1926 के पश्चात् बहुत लंबे समय तक नहीं चल पाई। अतः पार्टी ने असंबली से ‘वॉकआउट’ करने का निर्णय लिया।

वॉकआउट के पहले मोतीलाल नेहरू ने सदन के पटल पर एक ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने कहा, “हम जानते हैं कि देश की वर्तमान दशा में जब सांप्रदायिक कलह और असंतोष जारी है, हमारा एकमात्र संभव हथियार नागरिक अवज्ञा वर्तमान में हमारे लिए उपलब्ध नहीं है, परन्तु हम यह भी जानते हैं कि हमारे लिए इस विधानमंडल तथा देश के अन्य विधानमंडलों में अब और बने रहना व्यर्थ है। हम आज इस शक्तिशाली साम्राज्य को

उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से नहीं बाहर जा रहे। हम जानते हैं कि यदि हमारी ऐसी इच्छा हो तो भी हम ऐसा नहीं कर सकते। हम पूरी विनम्रता के साथ तथा अपने होंठों पर अपनी इस विफलता की स्वीकृति के साथ जा रहे हैं कि हम इस सदन में अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पाए।” (के.ए. पणिक्कर और ए. परशाद (सं.), दि वॉयस ऑफ फ्रीडम : सेलेक्टेड स्पीचेस ऑफ पंडित मोतीलाल नेहरू, बांबे, 1961, पृ0 290)

सरकार के खिलाफ विरोध का सिलसिला प्रांतीय परिषदों में भी जारी रहा। केंद्रीय प्रांत में इसका बहुमत होने की वजह से यह विरोध ज्यादा प्रभावी था परन्तु सभी प्रांतों में स्वराजियों की गतिविधियों की प्रकृति लगभग समान थी। सरकारी प्रस्तावों का विरोध किया गया। सदन के पटल पर सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पेश किया गया। सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट की आलोचना की गई और उसका विरोध किया गया। तथा शुरुआती वर्षों में स्वराज पार्टी के सदस्यों द्वारा किसी प्रकार का कोई पद ग्रहण नहीं किया गया।

जैसा कि संभवतः आप जानते होंगे, 1919 के भारत सरकार अधिनियम में द्वि-शासन की योजना प्रस्तुत की गई। इस योजना के अंतर्गत मंत्रिस्तरीय जिम्मेदारियाँ आरक्षित विषयों (जो सीधे ब्रिटिशों के अंतर्गत थे) तथा स्थानांतरित विषयों (जिन्हें चुने हुए प्रतिनिधियों के नियंत्रण में लाया गया) के बीच विभाजित कर दी गई। भू-राजस्व, प्रबंधन, पुलिस, न्यायपालिका, प्रेस तथा सिंचाई आरक्षित विषय थे। स्थानीय स्वशासन, चिकित्सकीय, प्रबंधन, शिक्षा और कृषि स्थानांतरित विषयों के अंतर्गत लाए गए। जब स्वराज पार्टी के विधायकों को (विशेष रूप से केंद्रीय प्रांत और बंगाल में जहां उनकी अच्छी खासी संख्या थी) स्थानांतरित विषयों का नियंत्रण स्वीकार करने को कहा गया, तो उन्होंने मना कर दिया। बंगाल परिषद् के नेता सी.आर. दास ने कहा “स्वराज पार्टी के सभी सदस्य इस हेतु प्रतिबद्ध हैं कि द्वि-शासन को चलाना नहीं है, अपितु इसे समाप्त करना है।”

यह कहा जा सकता है कि स्वराजियों की गतिविधियों ने उस समय की राष्ट्रवादी राजनीति में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया। परन्तु इस तरह की राजनीति की अपनी सीमाएँ थीं। मोतीलाल नेहरू ने 1926 में स्वीकार किया कि स्वराजियों की राजनीति देश को स्वराज की तरफ आगे ले जाने में सफल नहीं हो पाई। यहां तक कि असेंबली में भी सरकार स्वराज पार्टी के विरोध की अवहेलना करने में सफल थी। वायसराय 1919 के अधिनियम द्वारा दिए गए अपनी विशेष शक्तियों का हमेशा प्रयोग करके सरकार के सभी प्रस्तावों को पारित कर देता था। इस प्रकार सरकारी प्रस्ताव सदन के बहुमत के समर्थन की आवश्यकता के बिना अधिनियम बन गए। अतः सदन में स्वराज पार्टी द्वारा किए गए विरोध का कोई विशेष मूल्य नहीं था। स्वराज पार्टी की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या थीं?

14.6 स्वराज पार्टी की प्रमुख उपलब्धियाँ

यह स्पष्ट है कि स्वराजी नेता असेंबली और परिषदों की कार्यप्रणाली को परिवर्तित करने में सफल नहीं हो पाए। विधानमंडलों के ऊपर ब्रिटिश नियंत्रण वैसा ही बना रहा। वहां पर कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो पाया। तब भी, कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तरीके थे जिनके जरिए स्वराजी राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास में योगदान करने में सफल हो सके। पहला, वे राष्ट्रवादी आंदोलन के विविध और असमान तत्वों को एक साथ एक ही मंच पर लाने में सफल हुए। 1920 के दशक के दौरान मोतीलाल नेहरू इस बात पर विश्वास करने लगे थे कि देश की अलग-अलग राजनीतिक शक्तियाँ साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के समर्थकों के रूप में स्पष्ट होने लगे थे। यह प्रमुख विभाजक रेखा बन चुकी थी। अतः यह संभव और अनिवार्य दोनों हो चला था कि सभी अलग-अलग छवियों और रंगों को एक साथ लाया

जाए। इसने उन्हें यह सामर्थ्य दिया कि वे राजनीतिक रूप से एक तरफ जहां मुहम्मद अली जिन्ना तक पहुंचे तो दूसरी तरफ मदनमोहन मालवीय और लाला राजपत राय। स्वराजियों ने असेंबली और परिषदों में भारतीय सदस्यों का एक विस्तृत गठबंधन बनाने की कोशिश की। तथापि, असेंबली के अंतिम समय में इस विस्तृत राष्ट्रवादी गठजोड़ में न सिर्फ दरारें पड़ने लगीं, बल्कि यहां तक कि स्वराजियों के बीच भी एकता बनाए रखना मुश्किल हो चला।

दूसरा, स्वराजियों की गतिविधियों ने स्वराज की मांग को निश्चित रूप से लोकप्रिय बनाया। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। स्वराजी 'औपनिवेशिक संविधानवाद' के दड़बे तक ही सीमित नहीं रहे और राष्ट्रवादी राजनीति के बाहर उनके संबंध वैसे ही मजबूत बने रहे। वे जनमत को प्रभावित करने में भी सफल रहे। असेंबली के पटल पर उनकी गतिविधियों को अच्छी कवरेज मिली। इस समय तक एक बड़ी संख्या में अंग्रेजी समाचारपत्र अखिल भारतीय प्रसार प्राप्त कर चुके थे। स्वदेशी गतिविधियों की रिपोर्टिंग अंग्रेजी और भारतीय भाषा के अन्य समाचार पत्रों में हुई। स्वराज पार्टी की उपलब्धियों को असेंबली के दो सत्रों के बीच की तुलना द्वारा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। 1920 के चुनाव के कांग्रेस द्वारा बहिष्कार के कारण असेंबली में राष्ट्रवादी उपस्थिति लगभग नगण्य थी और सरकार को किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा, जबकि 1923 से 1926 के दौरान सरकार के सभी विधेयकों को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। सरकार को पांच बार विधेयक को वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। सरकार के अधिकांश प्रस्ताव वायसरॉय की विशेष शक्तियों को लागू करने के जरिए ही पारित हो सके।

14.7 1926 के पश्चात् स्वराजवाद : अवसान, विघटन, विलय

1926 के चुनावों के समय तक देश का राजनीतिक वातावरण काफी बदल चुका था। इससे स्वराज पार्टी की नियति को प्रभावित तो होना ही था। आगामी अवसान और विघटन आंशिक रूप से इस परिवर्तन का भी परिणाम था। असहयोग आंदोलन की वापसी के पश्चात् देश में अभूतपूर्व स्तर पर सांप्रदायिक दंगे हुए। केवल उत्तर प्रदेश में 1923-27 के दौरान सांप्रदायिक हिंसा की लगभग 91 घटनाएँ हुईं। यही वह समय था जब भारतीय राजनीति में संप्रदायवाद की राजनीति एक बड़े स्तर पर दाखिल हुई। इन परिस्थितियों में स्वराज पार्टी ने जिन्ना और मालवीय जैसे नेताओं के साथ जिस प्रकार का कार्यकारी गठजोड़ बनाया था, वह इन परिस्थितियों की चपेट में आ गया और अंततः टूट गया। इसने असेंबली और परिषदों में पार्टी की स्थिति को कमजोर कर दिया।

पार्टी और उसकी राजनीति से मोहभंग भी बढ़ता जा रहा था। जिन्होंने पार्टी से यह अपेक्षा पाली थी कि वह विधायी प्रक्रियाओं द्वारा एक राजनीतिक परिवर्तन ले आएगी, वे यह देखकर अत्यंत निराश हुए कि किसी भी पार्टी का विरोध उसे अधिनियम बनने से नहीं रोक पाया। असेंबली में विरोध की राजनीति भी अब अपनी नवीनता खो रही थी।

स्वयं पार्टी के अंदर कलह और गुटबाजी के पैदा होने से समस्या और बढ़ गयी। सी.आर. दास की (पचपन वर्ष की अवस्था में) 1925 में मृत्यु हो गयी और पार्टी के कई सदस्यों के मन में विधानमंडलों में अवरोधवाद की प्रभावकारिता के ऊपर संदेह पैदा हो गया। कई सदस्य विधानमंडलों में उत्तरदायी सहयोग की वैकल्पिक राजनीति निभाने की वकालत भी करने लगे। एम.आर. जयकर और एन.सी. केलकर इस नीति के प्रतिपादकों में प्रमुख थे। इस नीति के भाग के रूप में कई स्वराजी सदस्यों ने विधानमंडलों में पद स्वीकार कर लिया। विट्ठल भाई पटेल ने केंद्रीय असेंबली के अध्यक्ष का पद स्वीकार किया। यह सब कुछ स्वराज पार्टी की आधिकारिक और घोषित नीतियों के विरुद्ध था।

जैसी कि अपेक्षा थी, 1923 की तुलना में 1926 के चुनाव में स्वराज पार्टी की स्थिति कमजोर हुई। परन्तु विधायी अवरोध की राजनीति को जिस चीज ने निरर्थक बनाया, वह था देश के राजनीतिक माहौल में आया अचानक परिवर्तन। यह परिवर्तन 'पूर्ण श्वेत' साइमन कमीशन के आगमन के जरिए आया जो 1919 के अधिनियम के प्रभावों का आकलन करने तथा भारत के संवैधानिक विकास के लिए नए प्रस्तावों के निर्माण हेतु आया था।

14.8 साइमन कमीशन : असहयोग की वापसी

1919 के अधिनियम ने यह निर्धारित किया कि इसके कार्यकलापों का दस साल के बाद मूल्यांकन किया जाएगा। सितंबर 1924 में मोतीलाल नेहरू ने असेंबली में यह प्रस्ताव रखा कि यह मूल्यांकन पहले किया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव सरकार के विरोध के बाद भी पारित हो गया। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने 1927 में भारतीय सांविधानिक आयोग के निर्माण की घोषणा की। यह कमीशन ब्रिटिश संसद के सदस्यों से निर्मित था और जॉन साइमन इसकी अध्यक्षता कर रहे थे। कमीशन को यह अधिकार दिया गया था कि वह "सरकार चलाने के तंत्र, शिक्षा की वृद्धि तथा ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधिक संस्थाओं के विकास की जांच करें। साइमन कमीशन की नियुक्ति को भारतीय राजनीतिक हलके में असंतोष और अस्वीकृति का सामना करना पड़ा। असंतोष का तात्कालिक कारण यह था कि कमीशन में कोई भारतीय शामिल नहीं था। सभी बड़े राजनीतिक दलों ने कमीशन का विरोध और बहिष्कार करने का निर्णय लिया। एक तरह से इसने कांग्रेस के अंदर की विभिन्न धाराओं को एकजुट कर दिया तथा नो-चेंजर्स और प्रो-चेंजर्स के बीच के राजनीतिक मतभेद अदृश्य हो गए। बाद में मोतीलाल नेहरू ने साइमन कमीशन के बारे में यह घोषणा की कि "जबकि कमीशन एक स्वांग था, इसकी रिपोर्ट उससे भी बड़ा स्वांग थी।" 1927 में उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि विधानमंडलों का विरोध अब अंदर से नहीं अपितु बाहर से किया जाएगा। असेंबली के पटल पर लाजपतराय ने कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा और मोतीलाल नेहरू ने इसका समर्थन किया। उन्होंने असेंबली के पटल पर यह घोषणा की कि "ब्रिटिश संसद, ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकार इनको कोई हक नहीं है कि हमारी इच्छाओं के विरुद्ध ये भारत के ऊपर एक संविधान थोप सकें।" इस प्रकार साइमन कमीशन के आने से कांग्रेस की मुख्य धारा की राजनीति, जो कि 1922 के पश्चात् किनारे पड़ गई थी, ने पुनः अपनी एकता प्राप्त कर ली।

यह निर्णय लिया गया कि साइमन कमीशन का सिर्फ बहिष्कार पर्याप्त नहीं था और भारतीयों को साइमन कमीशन की रिपोर्ट का एक विकल्प तैयार करना चाहिए। इसमें भारतीय नेताओं द्वारा निर्मित भारतीय संविधान के मसौदे का निर्माण निहित था। अतः साइमन कमीशन के सफल बहिष्कार के बाद एक महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेता एम.ए. अंसारी के नेतृत्व में फरवरी 1928 में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन में भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए एक उपसमिति का गठन किया। मोतीलाल नेहरू इस उपसमिति के अध्यक्ष बनाए गए। प्रमुख उदारवादी नेता तेजबहादुर सप्रू उपसमिति के एक अन्य महत्वपूर्ण सदस्य थे। इस निर्णय ने स्वराज पार्टी के अलग राजनीतिक अस्तित्व को समाप्त कर दिया। स्वराज पार्टी का राजनीतिक जीवन 1923 और 1928 के बीच फैला है। यह परिषद् – प्रवेश से शुरू हुआ और भारत के संविधान निर्माण की प्रक्रिया तक आकर समाप्त हुआ। जुलाई 1928 में उपसमिति ने देश के सामने एक संविधान प्रस्तुत किया जिसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना गया।

नेहरू रिपोर्ट को भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के एक प्रमुख राजनीतिक दस्तावेज़ के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। इसका महत्व इस तथ्य में निहित है कि इसने 1950 में बने

भारतीय संविधान के लिए एक अग्रदूत का कार्य किया। भारतीय संविधान ने नेहरू रिपोर्ट से कई धाराएं और प्रावधान उधार लिए। यह भारतीयों द्वारा खुद के लिए निर्मित प्रथम संवैधानिक दस्तावेज़ था। इसने अत्यंत ही प्रभावी रूप से उस ब्रिटिश उपनिवेशवादी दावे को भी नष्ट कर दिया कि भारतीय रचनात्मक संवैधानिक राजनीति में अक्षम हैं। जैसाकि पहले से ही ज्ञात था, नेहरू रिपोर्ट को ब्रिटिश सरकार ने अस्वीकार कर दिया। दुर्भाग्य से यह भारतीय दलों के बीच भी कोई आम सहमति नहीं बना पाई। इस समय तक मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा के बीच के मतभेद इतने कटु हो चुके थे कि अब यह संभव नहीं रह गया था कि दोनों दलों की मांगों को एक ही दस्तावेज़ में समायोजित किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप, नेहरू रिपोर्ट सिर्फ एक कागजी दस्तावेज़ बनकर रह गई। और वह शक्तिशाली और गतिशील सांवैधानिक विकल्प नहीं बन सकी जिसकी इससे अपेक्षा थी। इसका महत्व वास्तविक से ज्यादा मनोवैज्ञानिक था तथापि इसने स्वराजियों की राजनीति के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व किया। स्वराजियों की राजनीति की शुरुआत 'परिषद्-प्रवेश' के एजेंडे से हुई थी। परिषद्-प्रवेश ने स्वराज पार्टी को कांग्रेस से दूर कर दिया। यद्यपि, उनका संबंध कभी नहीं टूटा। स्वराज पार्टी ने मुख्यधारा की कांग्रेस राजनीति के समानांतर रहकर कार्य किया। परिषद्-प्रवेश की राजनीति तार्किक रूप से संविधान निर्माण की राजनीति में शामिल हो गई। और इसके साथ ही दोनों के बीच का अंतर अदृश्य हो गया। अतः स्वराज पार्टी को एक ऐसी महत्वपूर्ण राजनैतिक धारा के रूप में समझा जाना चाहिए, जिसका उद्भव कांग्रेस के अंदर से हुआ, 1923 से 1928 के दौरान इसके समानांतर चली और अंततः अपने पैतृक संगठन में ही विलीन हो गई।

एक दशक के उपरांत, 1935 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक नया अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में प्रांतीय स्वायत्तता की स्वीकृति दी और इस समय कांग्रेस ने एकजुट होकर प्रांतीय चुनाव में लड़ने का फैसला किया। इन चुनावों में कांग्रेस ने जबर्दस्त सफलता प्राप्त की और कुछ वाद-विवादों के पश्चात् 11 में से 7 प्रांतों में सरकार बनाई। अतः एक तरह से स्वराजियों के कार्यक्रम को कांग्रेस ने 1937 में एक मत से अपनाया। यह स्वराज पार्टी की अंतिम विजय थी।

14.9 गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम

जैसाकि इकाई में पहले उद्धृत किया गया है, असहयोग आंदोलन की वापसी ने राष्ट्रवादी गतिविधियों में बहुरूपता को जन्म दिया। परिषद्-प्रवेश वह एक धारा थी, जो आंदोलन की वापसी की वजह से पैदा हुए खालीपन से निकली। दूसरी तरफ, हिंसक क्रांतिकारी गतिविधियां थीं, उ.प्र., पंजाब और बंगाल में कई युवाओं ने भूमिगत हिंसा का सहारा लिया। आंदोलन से जो अन्य रूप विकसित हुआ, वह रचनात्मक कार्यक्रम था। यह साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष की गाँधीवादी रणनीति का एक महत्वपूर्ण घटक था। यह खादी कताई, ग्रामीण उद्योगों, राष्ट्रीय शिक्षा और हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष तथा हरिजनों के सामाजिक उत्थान एवं विदेशी वस्तुओं और शराब के बहिष्कार के प्रचार-प्रसार के इर्द-गिर्द घूमता था। इन सबके ऊपर रचनात्मक कार्य का अर्थ था— गांवों में जाना और ग्रामीण पुनर्निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना। इस आवेग के अंतर्गत गांवों में कई आश्रम खुले और उन्होंने कताई तथा खादी के कार्य को अपने हाथों में लिया। राष्ट्रवादी संघर्ष हेतु इस प्रकार के कार्य का प्रमुख महत्व यह था कि इसने संघर्ष को निरंतरता प्रदान की और आंदोलन के विभिन्न चरणों को एक दूसरे से जोड़ने में मदद की। इसने लोगों को आंदोलन के अगले चरण के लिए तैयार किया और संघर्ष में भाग लेने वालों के बीच हतोत्साहन और मोहभंग को रोका। गाँधी इस बात से पूरी तरह भिन्न थे कि संघर्ष के एक लंबे चरण को

जनसमूह आसानी से अनवरत् नहीं कर पाएगा। जनसमूह के पास संघर्ष को कायम रखने हेतु राजनीतिक ऊर्जा का अक्षय भंडार नहीं था। यह आवश्यकता थी कि उन्हें प्रदर्शन से कुछ देर के लिए विराम मिले और फिर भी वे आंदोलन से जुड़े रहें। रचनात्मक कार्य ने इस बड़ी आवश्यकता को पूर्ण किया।

इसके अलावा रचनात्मक कार्य का एक अन्य गुण था कि इसने आंदोलन को अशिक्षित जनसमूह के बीच तक ले जाने में सहायता की जिन्होंने गाँधी के आंदोलन के “इस्पाती ढांचे” निर्माण किया। यह गाँधी के रचनात्मक कार्यों का ही कमाल था कि राष्ट्रवादी आंदोलन गांवों तक पहुंचा। राष्ट्रीय आंदोलन के ग्रामीण घटक का समेकन या तो किसान आंदोलनों या गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा हुआ। किसान आंदोलन स्पष्ट कारणों की वजह से काफी समय तक नहीं चल पाया। परन्तु रचनात्मक कार्यक्रमों को किसी भी समय शुरू किया जा सकता था और लंबे समय तक चलाया जा सकता था। रचनात्मक कार्यक्रम ने आंदोलन के सामाजिक आधार के विस्तार में भी मदद की। लोगों की एक बड़ी भारी संख्या जिनका संगठित आधुनिक राजनीति के प्रति कोई झुकाव नहीं था तथा जो जेल जाने के भी अनिच्छुक थे, आसानी से गांवों में रचनात्मक कार्यक्रमों को अपना सकते थे। अतः एक तरह से रचनात्मक कार्यक्रमों ने बिना किसी सामाजिक मूल्य चुकाने की आवश्यकता के। भारी मात्रा में लोगों को राष्ट्रवादी आंदोलन में भाग लेने के योग्य बनाया।

तथापि, ऊपर लिखित विवरण का अर्थ यह सुझाना नहीं है कि गाँधी के रचनात्मक कार्यों का सिर्फ सहायक मूल्य ही था, कि यह केवल साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का एक यंत्र था। यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी। कताई ने उन भूमिहीन कृषक मजदूरों को आय का अतिरिक्त स्रोत मुहैया कराया, जो निम्न वर्ग से आते थे रचनात्मक कार्यों को विनियमित करने के लिए गाँधी ने अखिल भारतीय कताई संघ का गठन किया जिसका उद्देश्य था शहरी लोगों के मध्य हाथ से बुने गए कपड़ों के प्रयोग पर जोर देकर ग्रामीण रोजगार निर्मित करना। कताई संघ जल्द ही 5000 गांवों तक पहुंच गया और 5 लाख से ऊपर कताई करने वालों और 20,000 से अधिक बुनकरों को रोजगार दिया। अपने गठन के दस वर्षों के अंदर इसने गांवों में दो करोड़ रुपए के वितरण में सफलता प्राप्त की।

अपनी आर्थिक व्यवहार्यता के अतिरिक्त ग्रामीण पुनर्निर्माण का गाँधी के लिए एक महान नैतिक महत्व था। उनका मानना था कि वास्तविक भारत गांवों में ही बसता है, शहरों में नहीं। इस बात से पूरी तरह अवगत होने की वजह से कि गांव और गांववासी दयनीय परिस्थितियों में रहते हैं, गाँधी ने सुझाव दिया, “यदि भारत गांवों में बसता है तो कम से कम एक आदर्श गांव होना चाहिए, ताकि वह सारे देश के लिए एक मॉडल का कार्य कर सके। आदर्श गांव का यह मॉडल वास्तव में गाँधी के मस्तिष्क में बसता था। 1945 में जवाहरलाल नेहरू के साथ स्वतंत्र भारत के भविष्य पर एक रोचक बहस में गाँधी ने लिखा “मेरे सपनों का गांव अभी भी मेरे मस्तिष्क में है। अंततः प्रत्येक मनुष्य अपने सपनों की दुनिया में ही तो जीता है। मेरे आदर्श गाँव में बुद्धिमान मनुष्य होंगे। वे जानवरों की तरह गंदगी और अंधेरे में नहीं रहेंगे। पुरुष और स्त्री स्वतंत्र होंगे और विश्व में किसी के भी विरुद्ध अपने स्व को टिकाये रखने में सक्षम होंगे। वहां पर न तो प्लेग होगा, न ही हैजा, नहीं चेचक। कोई भी आलसी नहीं होगा और न ही कोई विलासिता में लोटेगा। सबको अपने हिस्से का शारीरिक श्रम करना होगा।” (जवाहरलाल नेहरू को पत्र, 5 अक्टूबर, 1945) और जब गाँधी द्वारा सुझाये गए तरीकों के साथ भारतीय गाँव विकसित होंगे तो उनमें “उच्च स्तरीय कौशल और कलात्मक प्रतिभा के लोगों की कोई कमी नहीं होगी। ग्रामीण कवि होंगे, ग्रामीण कलाकार होंगे; ग्रामीण वास्तुकार होंगे, भाषाविद् होंगे और

शोधार्थी होंगे। संक्षेप में जीवन में ऐसा होने लायक कुछ भी नहीं होगा, जो गाँवों के पास नहीं होगा।”

संक्षेप में, रचनात्मक कार्यक्रम एक बहुपक्षीय घटना थी। इसका एक रणनीतिक, एक आर्थिक और एक नैतिक आयाम था। यह साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष की गाँधी की रणनीति का महत्वपूर्ण घटक था जिसमें प्रदर्शन के चरण रचनात्मक कार्यक्रमों के चरण के आगे-पीछे चलते थे और इस प्रकार बिना किसी विराम के आंदोलन चलता रहता था। उसी समय, खादी ने गरीब ग्रामवासियों को आर्थिक राहत और जीविका मुहैया कराई और अंततः यह गाँधी के आदर्श ग्रामीण जीवन के विज़न से भी संबंधित था।

14.10 सारांश

इस इकाई में यह कोशिश की गई कि स्वराज पार्टी के राजनीतिक महत्व और राष्ट्रवादी आंदोलन में इसकी भूमिका को व्याख्यायित किया जा सके। स्वराजियों का प्रयोग राष्ट्रवादी राजनीति का एक संक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण प्रकरण था। इसका जीवनकाल आंदोलन राजनीति के दो चरणों 1920 से 1922 तथा 1930 से 1934 के बीच फैला है। स्वराज पार्टी का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रवादी आंदोलन को विधायी क्षेत्र तक बढ़ाना था। विचार यह था कि स्वराजी परिषदों में जाएंगे और ब्रिटिशों द्वारा निर्मित संरचना के अंदर रहकर ब्रिटिश शासन का विरोध करेंगे। स्वराजी नेताओं मोतीलाल नेहरू और सी.आर. दास ने विधायी राजनीति के महत्व को महसूस किया और इसके बहिष्कार के बजाय इसे राष्ट्रवादी प्रकोष्ठ में ले आए। स्वराज पार्टी ने 1923 और 1926 में दो बार चुनाव लड़े तथा परिषदों और असेंबली में राष्ट्रवादी विपक्ष की भूमिका अदा की।

स्वराजी राजनीति का सर्वोत्कृष्ट बिन्दु वह था जब उन्होंने भारतीयों के लिए कानून बनाने के ब्रिटिश सरकार की किसी भी नैतिक वैधता से इनकार कर दिया और इस बात पर जोर दिया कि केवल भारतीय ही अपने लिए संविधान निर्मित कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप सभी बड़ी राजनीतिक पार्टियों ने कांग्रेस नेतृत्व के बैनर तले आकर भारत के संविधान का एक मसौदा तैयार किया। इसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना गया। नेहरू रिपोर्ट को 1950 में लागू किए गए स्वतंत्र भारत के संविधान के अग्रदूत के रूप में उचित रूप से देखा जा सकता है।

नेहरू रिपोर्ट के निर्माण के पश्चात् स्वराजियों की गतिविधियाँ समाप्त हो गईं। साइमन कमीशन के आगमन के साथ राजनीतिक वातावरण अचानक प्रदर्शनकारी राजनीति के पक्ष में झुक गया। इसके साथ ही स्वराज पार्टी का अलग अस्तित्व समाप्त हो गया और पार्टी कांग्रेस में समा गई। परन्तु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि 1930 के दशक में विधायी राजनीति कांग्रेसी राजनीति का एक महत्वपूर्ण मुद्दा बनी। 1937 में कांग्रेस ने केंद्रीय और प्रांतीय असेंबलियों के चुनावों में हिस्सा लिया और भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत 11 में से 7 प्रांतों में सरकार बनी।

यह इकाई गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों के सार पर भी ध्यान देती है। चौरी-चौरा में भीड़ द्वारा की गई हिंसा के पश्चात् असहयोग आंदोलन की वापसी से राष्ट्रवादी आंदोलन कई प्रभागों में, बंट गया। एक तरफ 'सांविधानिक विपक्ष' की स्वराजी राजनीति थी, दूसरी तरफ पंजाब, उ.प्र. और बंगाल में हिंसक क्रांतिकारी घटनाएँ थीं। तथापि, राष्ट्रवादी परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण स्थान पर गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों ने कब्जा किया। इसमें शामिल था—खादी, कताई, ग्रामीण उद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा और हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता के

विरुद्ध संघर्ष तथा निचली जातियों का सामाजिक उत्थान तथा विदेशी कपड़ों और शराब के बहिष्कार का प्रचार-प्रसार करना। रचनात्मक कार्यक्रमों के ज़रिए राष्ट्रवादी आंदोलन ने भारत के गांवों में प्रवेश किया। रचनात्मक कार्यों का महत्व त्रि-स्तरीय था। यह राष्ट्रवादी आंदोलन की रणनीति का एक महत्वपूर्ण घटक था जिसमें प्रदर्शनकारी राजनीति के चरण रचनात्मक कार्यक्रमों के आगे-पीछे चलते थे। इसने आंदोलन को सांस लेने की जगह दी और लोगों को अपनी ऊर्जा के नवीनीकरण का अवसर दिया। रणनीतिक महत्व के अलावा रचनात्मक कार्यक्रम का एक आर्थिक आयाम भी था। इसने गरीब ग्रामवासियों को रोज़गार का एक वैकल्पिक स्रोत मुहैया कराया जो कि अपनी आय के एवज़ में खादी का कार्य करते थे। अखिल भारतीय कताई संघ के नेतृत्व में खादी कार्यक्रम लगभग 5000 गांवों तक पहुंचा और इसने भारी मात्रा में लोगों की जीवन स्थिति में सुधार किया। परन्तु गाँधी के लिए ग्रामीण पुनर्निर्माण का महत्व और गहरा था। गाँधी ने इस कार्यक्रम को भारत के गांवों के रूपांतरण की चाभी के रूप में देखा। गाँधी के लिए गांव एक उन्नत नैतिक जीवन के भंडार थे, तथा अत्यधिक औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप मानवीय जीवन को चपेट में ले चुकी विकृतियों का प्रभावी जवाब थे। दूसरे शब्दों में, गांवों का पुनर्निर्माण गाँधी के आदर्श ग्रामीण जीवन के विज़न से जुड़ा था। एक आदर्श ग्रामीण जीवन एक केन्द्रीयकृत आक्रामक तथा बलात् आधुनिकता का गाँधी द्वारा दिया गया जवाब था। इस अर्थ में गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम का महत्व साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रवादी संघर्ष के काफी परे गया।

14.11 अभ्यास

- 1) स्वराज पार्टी के निर्माण की पृष्ठभूमि क्या थी?
- 2) एक राजनीतिक विचार के रूप में स्वराजवाद का सार क्या था?
- 3) राष्ट्रवादी आंदोलन की अभिवृद्धि में स्वराज पार्टी ने किस प्रकार योगदान किया?
- 4) गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम का सार क्या था?

- ए.एल. बॉशम, 'ट्रेडिशनल इन्फ्लूएंसेज ऑन दि थॉट ऑफ महात्मा गाँधी', ए. रघुरामाराजू, (सं.), डिबेटिंग गाँधी: ए रीडर, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006
- बी.आर टॉमलिंगसन, दि पॉलिटिकल इकॉनामी ऑफ दि राज 1914-47: दि इकॉनामिक्स ऑफ डिक्लॉनाइज़ेशन इन इंडिया, लेडन: मैकमिलन, 1979
- बी.आर. नंदा, दि नेहरूज़, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962
- बिपिन चंद्र और अन्य, इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस 1857-1947, नई दिल्ली: पेंग्विन बुक्स, 1989
- बिपिन चंद्र, हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली: ओरिएंट लांगमैन
- बिपिन चंद्र, इंडियन नेशनल मूवमेंट: दि लांग टर्म डायनेमिक्स, नई दिल्ली, 2008
- ज्यूडिथ एम. ब्राउन, गाँधीज राइज टू पॉवर: इंडियन पॉलिटिक्स 1915-1922, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972
- फ्रांसिस रॉबिंसन, सेपरेटिज़्म आमांग इंडियन मुस्लिम: दि पॉलिटिक्स ऑफ दि यूनाइटेड प्रोविंसेज़ मुस्लिम्स 1860-1923, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1974
- गेल मिर्नॉल्ट, दि खिलाफत मूवमेंट: रिलिजीयस सिंबोलिज़्म एंड पॉलिटिकल मोबिलाइज़ेशन इन इंडिया, दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982
- डेविड हार्डीमेन, पीजेंट नेशनलिस्ट्स ऑफ गुजरात: खेड़ा डिस्ट्रीक्ट 1917-1934, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981
- हयूज टिकर, 'इंडिया इन दि फर्स्ट वर्ल्ड वॉर एंड आपटर', जर्नल ऑफ कंटेपररी हिस्ट्री, वो. 3, नं.4, 1968
- के.एम. पणिकर एंड ए. परशाद (एड.), दि वॉयस ऑफ फ्रीज़्म: सेलेक्टेड स्पीचेज़ ऑफ पंडित मोतीलाल नेहरू, बांबे, 1961
- कमलेश मोहन, मिलिटेंट नेशनलिज़्म इन दि पंजाब, 1919-1935, नई दिल्ली, 1985
- रविन्द्र कुमार (एड.) एसेज ऑन गाँधीयन पॉलिटिक्स : दि रौलट सत्याग्रह ऑफ 1919, ऑक्सफोर्ड: क्लेयरडन प्रेस, 1971
- एम.एन. गुप्ता, दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन रेवोल्यूशनरी मूवमेंट, बांबे, 1972
- मानीनि चैटर्जी, डू एंड डाई: दि चिटगांग अपराइजिंग 1930-34, नई दिल्ली, 2000
- मुशीरुल हसन, 'पैन-इस्लामिज़्म वर्सेज़ इंडियन नेशनलिज़्म', इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जून 14, 1986
- मुशीरुल हसन, 'रिलीजन एंड पॉलिटिक्स: दि उलमा एंड खिलाफत मूवमेंट', इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, मई 16, 1981
- मुशीरुल हसन, नेशनलिज़्म एंड कम्पूनल पॉलिटिक्स इन इंडिया 1885-1930

राष्ट्रीय आंदोलन –
जन आधारित राजनीति
की अवस्था-1

- जे. पौचपेडास, चंपारण एंड गाँधी: प्लार्टर्स, पीजेट्स एंड गाँधियन पॉलिटिक्स
- एस. इरफान हबीब, टू मेक दि डेफ हियर: आइडियोलॉजी एंड प्रोग्राम ऑफ भगत सिंह एंड हिज़ कॉमरेड्स, 2007, नई दिल्ली
- सुमित सरकार, स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल, 1903–1908, नई दिल्ली, 1973
- सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया, मद्रास: मैकमिलन, 1983, 1985
- वैंलेंटाइन चिरॉल, इंडियन अनरेस्ट, नई दिल्ली, 1979

